वर्ष ७, अंक ८

श्रीकृष्णाय नमः

वैशाख पूर्णिमा १९८९

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		२२०
२.	भगवद्भक्ति (ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी		२२६
३.	हम इस जगत् में किस लिये आये हैं ? (ले० श्रीस्वामी आत्मानन्द जी		२२६
४.	आह्वान (कविता) [ले० श्रीमती बृजकुमारी "प्रभाकर"		२३१
५.	मनुष्य में ईश्वरीय शक्ति का दान [ले० श्रीराम कुमार जी जोशी		२३१
६.	पूर्व स्मृति (कविता) [ले० श्रीमती कुमारी शान्ति हिन्दी भूषण		२३३
७.	श्रीराम कृष्ण [ले० श्रीरामचन्द्र सिंह यादव		२३४
८.	योग साधन [ले० श्रीस्वामी शिवानन्द जी सरस्वती		२३६
९.	बाँसुरी बताई है (कविता) [ले० श्रीशान्ति स्वरूप वर्मा		२४४
१०.	सदाचार का संक्षेप तत्व [ले० आचार्य मदन मोहन जी गोस्वामी		२४४
११.	शुभ संकल्प [ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम		२४५
१२.	आत्मानुभूति [ले० श्री महात्मा राम		२४६
१३.	श्रुतिसार		२५२
१४	सत्योपदेश		२५५
१५.	भजन		२५६

———

REGD No. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।-)
३. वेदोपनिषद्		-)।
४. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	-)।
५. ज्ञानधर्मोपदेश	,,	-)।।।
६ भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)।।
७. सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	।)
८. सत्य शब्द संग्रह	,,	।≡)
९. शब्दसंग्रह	,,	-)।
१०. सारसंग्रह	,,	।)
११. भाषा फक्किका प्रकाश	,	।=)
१२. मनुस्मृति सार	,,	≡)
१३. भक्ति चिन्तामणि	,,	।≡)
१४. भगवद्भक्तांक	,,	॥≡)
१५. भगवदंक	,,	।।।)
१६. गवांक	,,	१)
१७. महात्मांक	,,	१)

नोट:- एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक ब्रमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

सारथि श्रीकृष्ण

गीताप्रेस, गोरखपुर

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ७ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, वैसाख पूर्णिमा, मार्च १९३३ | अंक ८ पूर्ण संख्या ८०

वेदोपदेश

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुरीमघ ॥ १ ॥

हे सोमपायी और सत्यवादी इन्द्र! यद्यपि हम कोई धनी नहीं हैं, तो भी, हे बहुधनशाली इन्द्र! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें प्रशस्त धनवान करो ॥ १ ॥

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुरीमघ ॥ २ ॥

शक्ति शाली, सुन्दर नाक वाले और धनरक्षक इन्द्र! तुम्हारी दया चिरस्थायिनी है। वह धन शाली इन्द्र! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें प्रशंसनीय करो ॥ २ ॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥

शूर ! हमारे शत्रु सोये रहें और मित्र जागे रहें। बहु धन शाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौवों और घोड़ों से हमें प्रशस्त बनाओ ॥ ३ ॥

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥

विरुद्ध वायु, कुटिल गति के साथ, वन से दूर जाय। बहु धन शाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें धनी बनाओ ॥ ४ ॥

सर्व्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वं ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥

सब डाह करने वालों का वध करो। हिंसकों का विनाश करो। बहु धन शाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें प्रशंसनीय (धनवान) करो ॥ ५ ॥

ऋ० म० १ सू० २९ मं० १, २, ४, ६, ७.

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

कथा व्रजके ग्वालवालों की

श्रीनन्दनन्दन महाराज के असंख्य ग्वालबाल सखा हैं। उनमें श्रीदामा, मधु, मंगल, सुबल, सुबाहु, भोज, अर्जुन, मण्डल ये आठ सखा परम मित्र, हर घड़ी पास रहने वाले और दूसरे सब सखाओं के नायक हैं, जिस प्रकार श्रीराधिका जी के साथ ललिता, विसाखा, चित्रा, चंपकलता आदि आठ सखी हैं, उसी प्रकार भगवान के ये आठ सखा हैं। सिवाय इनके असंख्य सखा जैसे कि रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकंठ, मधुव्रत, रसाल, विशाल, प्रेमकन्द, मकरन्द, आनन्द, चन्द्रहास्य, पयद, बकुल, रसदान शारदबुद्धि येसब सखाभाव रखते हैं परन्तु ऊपर के आठ सेवकाई करने में और आज्ञा पालन करने में क्या गृह में क्या वनमें हर घड़ी कटिबद्ध और तत्पर रहते हैं -

सखाभाव वालों के जितने भाव अलग २ हैं, उन सबमें मुख्यता व्रज के ग्वाल बाल सखाओं की है, क्योंकि उनकी पदवी न्यून अथवा अधिक नहीं होती, भगवत् के नित्य विहार में पात्र रहते हैं और सब गोलोक निवासी हैं। जब भगवत् का अवतार होता है, तब वे भी साथ आते हैं। यदि कोई भगवत्की महिमा अथवा भगवच्चरित्र लिख सके, तो उनकी भी लिख सकेगा, नहीं तो जैसे भगवत् की महिमा अपार है, तैसे ही उनकी है और उनके परम पवित्र चरित्रों का यह महात्म्य है कि यदि कोई धोखे से भी उनके खेल, हंसी ठट्ठा, बाल चरित्रों की लीला सुनता है अथवा गान करता है, तो भगवत् बलात्कार से अपनी भक्ति उसको देकर उसके होजाते हैं।

हे मंसाराम ! सखाभाव के चरित्र इतने अगणित और अपार हैं कि शेष और शारदा भी वर्णन नहीं कर सकते, अपनी वाणि पवित्र करने को दो एक चरित्र संक्षेप से कहता हूं। जब भगवान् वन में गौ चराने को जाया करते थे, तो दो यूथ होकर खेल खेला करते थे। एक दिन बलदेव जी का यूथ जीत गया और लाल जी का यूथ हार गया। जब हारे हुये सखाओं ने एक २ जीते हुये सखा को अपनी २ चड्ढी चढ़ायी। श्रीदामा के भाग में नन्दनन्दन जी आये, जहां पहुंचाने का प्रबन्ध था, वह स्थान दूर था, थोड़ी दूर चल कर नन्दनन्दन जी महाराज को सुकुमारता के कारण पसीना आ गया, थक कर पहिले तो श्रीदामा की बहुत खुशामद और ललोपच्चों की कि आधी दूर तक ले जाऊंगा, जब वह न माने तो धमकाया, डराया कि अच्छा, कल को मैं पकड़ कर भले प्रकार शिष्टाचारी करूंगा, जब इस पर भी श्रीदामा जी न माने, तो लाल जी मचलाई करने लगे, परन्तु श्रीदामा जी ऐसे गुरु मिले कि एक डग भी नहीं छोड़ा, जहां तक का प्रबन्ध था वहां तक ही ले जाकर पीछा छोड़ा।

जब श्रीनन्दनन्दन महाराज कंस के बुलाये हुए मथुरा जी में गये, तो उन्होंने मुष्टिक, चाणूर आदि मल्लों को और कुवलयापीड मतवारे हाथी को बिना परिश्रम एक क्षण में मार डाला और उसी अखाड़े में जब व्रज ग्वालबालों के साथ कुश्ती होने लगी, तो कभी नन्दनन्दन महाराज ग्वाल बालों को धरती पर गिरा देते थे और कभी ग्वाल बाल उन को ऐसा पटकते थे कि शीघ्र उठने का सामर्थ्य नहीं रहता था। धन्य है। यह भक्तवत्सलता और प्रीति की पूर्णता !

जब सूर्य ग्रहण के पर्वत पर भगवत् द्वारका से कुरु क्षेत्र आये, तब सब व्रजवासी भी वहां आये थे। बहुत दिनोंपीछे परस्पर मिलाप हुआ, अन्य लोग तो अपने २ स्नेह और भाव के अनुसार भगवत् से मिले और भगवत् के सखा उस अपने रंग में रंगे हुए अपने दांव और पेंच के लेने को तैयार हुए और गुणानन्त, निर्विकार, अच्युत, आनन्दघन भगवत् को भी वह रंग ऐसा चढ़ा कि उनको प्रेम की नदी में मग्न कर दिया, और प्रेम का जल आंखों से बाहर निकल कर छाती, पेट, जंघा और पैरों को भिगोता हुआ, चरणों तक पहुंच गया ! ऐसा देख कर भगवद्भक्तों के आनन्द का पार न रहा, किसी को अपनी सुधि न रही !

कुं-लीलाधर जगपाल प्रभु, बेदपाल, सुरपाल।
गोकुल में गोपाल सो, हुए नन्द के लाल॥
हुए नन्द के लाल, प्रीति परिपूर्ण निभाये।
हार जीत दिखलाय, पीठ पर ग्वाल चढ़ाये॥
भोला ! भज गोपाल, भक्तपालक करुणाकर।
श्रीदामा का मित्र, राम अलता लीलाधर॥

कथा गोविन्द स्वामी की।

महाराज गोविन्द स्वामी के सखाभाव का चरित्र भगवद्भक्तों को परम आनन्द का देने वाला है और अभक्तों को भक्ति का देने वाला है। गोविन्द स्वामी सखाभाव की आराधना से थोड़े ही दिनों में उस पदवी को पहुंचे कि गोवर्धन नाथ जी के साथ सर्वदा खेल और क्रीड़ा में प्राप्त रह कर अपने परम मित्र के रूप अनूप में मग्न रहते थे। एक दिन गुल्ली दण्डा खेल रहे थे, जब गोविन्दस्वामी का दांव आया तो नटनागर महाराज भाग कर मन्दिर में आघुसे। गोविन्द स्वामी पीछे दौड़े आये भगवत् मूर्ति पर गुल्ली मारी, उधर से भगवत् के हिमायती अर्थात् मन्दिर के पुजारी लोग दौड़े और उन्होंने गोविन्द स्वामी की अत्यन्त ढिढाई समझ कर उनको धक्के देकर निकाल दिया और भगवत् से विमुख समझा, गोविन्दस्वामी ताड़ाग के किनारे आकर राह में बैठ गये और गालियां देकर कहने लगे कि अब तो हिमायत में जा बैठा है, भला कभी तो निकलेगा, जहाँ निकला कि ऐसी शिष्टाचारी करूंगा कि कभी किसी ने नहीं की होगी।

नन्दकिशोर महाराज को चिन्ता हुई कि अब तो बुरी तरह मेरी खोज में है, मुझ से बिना वन विहार और खेल के रहा नहीं जायगा और जब बाहर जाऊंगा तो न जाने क्या करेगा, इस शोच में नन्दकिशोर महाराज ने कुछ न खाया और परमभक्त गोसाई विट्ठलनाथ जी से कहा कि गोविन्दस्वामी के डर से हमसे कुछ भोजन नहीं किया जाता, यदि तुम्हें हमको कुछ भोजन कराना हो, तो गोविन्दस्वामी को प्रसन्न करो। यद्यपि गोविन्द स्वामी का दांव था, परन्तु मैं भाग कर मन्दिर में चला आया। अब वह तड़ाग पर बैठा हुआ मुझे गालियां दे रहा है, और जब बाहर जाऊंगा, तो न जाने क्या करेगा, जब तक उसका क्रोध शान्त न होगा, मुझे खाना पीना कुछ न सुहायगा, जब उसका क्रोध शान्त होगा, तब मुझे खानापीना सुहावेगा। विट्ठलनाथ जी दौड़े गये, विनय प्रार्थना करके बल से गोविन्द स्वामी को मना कर ले आये और मन्दिर में भगवत् के पास भेज दिया। वहां जब दोनों का आपस में मनाव हो गया और दोनों मित्र गले से गला लगा कर मिले, तब नन्दलाल महाराज ने भोग लगाया।

एक बार गोविन्दस्वामी बाह्य शङ्का को वन में जाकर बैठे तब लालजी महाराज जाकर दूर खड़े होकर आक के फल मारने लगे, गोविन्दस्वामी ने उसी दशा में उठ कर ऐसे आकके फल मारे कि व्रजमोहन महाराज ने घबरा कर भागने का विचार किया। संयोगवश गोविन्द स्वामी की माता उनको ढूंढती आगयी, तब गोविन्दस्वामी धोती बांध कर घर चले गये और झगड़ा निबट गया।

एक बार भगवत् के भोग के निमित्त मन्दिर को थाल जा रहा था, गोविन्दस्वामी, जो कि राह में प्रसाद की आशा से बैठे हुए थे, पुजारी से कहने लगे कि पहिले हमको दे जाओ, पीछे नन्दनन्दन के लिये थाल ले जाना। पुजारी ने न माना, गोविन्द स्वामी उसके हाथ से थाल छीन कर थाल की सब सामग्री खा गये और चल खड़े हुए। पुजारी क्रोधित होता हुआ गोसांई जी के पास आया और कहने लगा कि मैं पूजा सेवा से भर पाया, गोविन्द स्वामी भोग का थाल लूट ले गया। गोविन्द स्वामी को बुलाकर गोसाई जी ने पूछा कि यह क्या ढिढाई है, तो गोविन्दस्वामी कहने लगे कि तुम अपने लाला को अच्छे २ भोजन करा के फिरने, खेलने और लड़ने को तैयार कर देते हो

और वह पहिले बन ठन कर बन को चला जाता है मुझे जो भोजन पीछे मिलता है, तो उसको ढूंढता हुआ सारे बन में भ्रमित भ्रमित फिरता है. इसलिये मैं उससे पहिले ही क्यों न तैयार हो जाऊं? गोसाई जी ने हंस कर गोविन्दस्वामी का प्रताप, सखाभाव और उनकी भक्ति का वर्णन किया और आगे के लिये समझा दिया कि उनकी प्रसन्नता से ही भगवत् की प्रसन्नता समझनी चाहिये। गोविन्दस्वामी के बनाये हुये पद मनको भगवत् में इतनी जल्दी लगा देते हैं कि मानों मूल मंत्र हैं।

कुं-भगवत का जो हो चुका, सो निर्भय हो जाय।
भय का भय जिसका सखा, सो किससे भय खाय।
सो किससे यय खाय, सर्व से मुख जो मोड़ा।
चलते, बैठे नित्य चित्त भगवत् में जोड़ा॥
भोला! पाते दुःख, मित्र धन द्वारा सत के।
सुख पाते सर्वत्र, मित्र जो हैं भगवत के॥

कथा गंगवाल की।

गङ्गवाल व्रजनाथ जी के चेले, सखाभाव के परम भक्त और किसी सखा का अवतार थे। इन्होंने व्रज के चरित्रों का, सब सखियों का और भगवत् के सखाओं का विस्तार से वर्णन किया है। यह नन्दनन्दन महाराज के साथ खेल के परम आनन्द के रस में हरघड़ी मग्न रहते थे। उनको व्रज की भूमि प्राण से भी प्यारी थी, भगवत् चरित्रों में अत्यन्त प्रीति रखते थे और भगवत् कीर्तन में ऐसे निपुण थे कि उस समय उनके समान दूसरा गाने वाला नहीं था।

एक बार बादशाह श्रीवृन्दावन में आया और उनके गाने की बड़ाई सुन कर इनको बुलाया। बल से आये, वल्लभाचार्य भी उस घड़ी साथ में थे, दो पहर का समय था, इसलिये इन्होंने सारङ्ग ऐसा गाया कि बादशाह सहित जितने वहाँ थे, सब मोहित हो गये और भगवत् के प्रेम में मग्न हो गये। बादशाह यह प्रताप देख कर हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ और अत्यन्त अधीनता से यह विनय करने लगा कि मेरे साथ चलो। उत्तर दिया कि व्रजभूमि को छोड़ कर नहीं जा सका। बहुत कहा सुनी होने पर बादशाह कैद करके ले गया और नजरबन्द रक्खा राजा हरिदास जाति तोवर राजपूत ने यह वृत्तान्त सुन कर सिफारिश करके उनको छोड़ा दिया, तुरन्त ही यह व्रज में आये और अपने परम मित्र को देख कर परम आनन्द को प्राप्त हुए। ग्वालसंज्ञा सखाभाव होने से विख्यात थी।

कुं-गाने में हरि चरित के जिसका मन रंग जाय।
तीन लोक की सम्पदा, रज सम ताहि दिखाय॥
रज सम ताहि दिखाय, इन्द्रपद मिथ्या ता कूं।
हरि चरितन में प्रेम, लेश भी उपजा जाकूं॥
भोला! नाहीं स्वाद, इन्द्रपदवी पीने में।
जैसा अद्भुत स्वाद, चरित हरि के गाने में॥

हम इस जगत् में किस लिए आए हैं

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

जैसे एक बालक पाठशाला में पढ़ कर सुखी होना चाहता है, वैसे ही हमभी इस जगत् में ईश्वर को जानकर मोक्ष प्राप्त करने के लिये आये हैं।

जैसे एक नौकर अपने सेठकी नौकरी बजा-कर सुखी होना चाहता है, वैसे ही प्रभुकी सेवा करके मोक्ष प्राप्त करने के लिये ही हम उत्पन्न हुए हैं।

इस संसार में हम सर्वदा रहने के लिये नहीं आये हैं। यहां तो हम थोड़े दिनके मुसाफिर हैं। हमारा घरतो सर्व शक्तिमान् प्रभु के परम धाम में है। याद रखो कि खाने, पीने, पहरने, ओढ़ने, नाचने गाने, धनमाल पैदा करने और विषयानंद भोग करने के लिये ही प्रभु ने हमें उत्पन्न नहीं किया है, किन्तु ईश्वर का अनंत अखंड आनंद प्राप्त करने के लिये उसने हमें पैदा किया है किन्तु आश्चर्य है कि हम कुछ का कुछ कर बैठे हैं।

जैसे कि एक सेठने अपने नौकर को किसी काम के लिये भेजा वहां मार्ग में खेल हो रहा था खेल देखने के लिये नौकर वहां खड़ा होगया और सेठ का काम भूलगया। अंत में खेल समाप्त होने पर वह अपने सेठ के पास गया तब सेठ ने पूछा इतनी देर कहा लगी? नौकर ने कहा साहब! रास्ते में खेल होरहा था वहीं देखने के लिये खड़ा होगया और काम करना भूलगया। यह सुनकर सेठने उसे निकाल दिया और उस लापरवाह नौकर का बड़ा बुरा हाल हुआ।

इसी प्रकार परमात्मा रूपी सेठने इस जगत् में हमें भक्ति करने तथा मोक्ष प्राप्त करने के लिये भेजा है, किन्तु हम तो उपर्युक्त नौकर के खेल के समान लड़के, बच्चे और आनंद भोगादि में फंस गये हैं, इससे ईश्वर रूपी सेठकी भक्ति रूपी नौकरी करने की बात भूलगये हैं।

जैसे कोई मूर्ख मनुष्य भूसी रखकर दानों को फेंक देता है और कांच रखकर हीरा को फेंक देता है, वैसे ही हम क्षणिक जगत् के सुख के लिये हरि रूपी हीरा को फेंक देते हैं। किंतु यह बड़ी भारी भूल है एक पैसे के लिये राज छोड़देने के समान है।

अरे नर हरिका हेत न जाना।

उप जाया स्मिरण के काजे तैं कछु और ठाना॥
गर्भ माहि जिन रक्षा कीन्ही वहां खाने को दीन्हा।
जठर अग्नि सों राखि लियो है अंग सम्पूर्ण कीन्हा॥
बाहर आय बहुत सुधि लीन्ही दशन बिना पय प्यायो।
दांत भये भोजन बहु भांती हितसों तोहि खिलायो॥
और दिये सुख नाना विधि के समझि देखु मनमाहीं।
भूलो फिरत मना गर्वाये तू कछु जानत नाहीं॥
तव कारण सब कछु प्रभु कीन्हों तू कीन्हा निज काजा।
जग व्योहार पगोही डोले तोहि न आवे लाजा॥
अजहूं चेत उलट हरिसोंही जन्म सुफल करभाई।
चरण दास शुकदेव कहें यों सुमिरण है सुखदाई॥

२

भक्ति गरीबी लीजिये तजिये अभिमाना।
दो दिन जगमें जीवना आखिर मरजाना॥
पाप पुण्य लेखा लिखे यम बैठे थाना।
कह हिसाब तुम देहुगे जब जाहि दिवाना॥
मातपिता कोई यहां नहिं नहिं मीत पिछाना।
द्रव्य जहां पहुंचे नहीं सब ही बे गाना॥
एकसों एकहि होयगी हां सांच तुलाना।
काहूकी चालै नहीं छनै दूध अरु पाना॥
साहिब की करि बंदगी दे भूखे दाना।
समझावें सुखदेव जी चरण दास अयाना॥

दोहा

जो प्रभु भव जल तरन को, दियो मनुज तन नाव।
आप कहे भज ताहिको, मतचूके अब दाव॥
आप मनुज तन पायके, जो न भजत यदुनाथ।
सो पीछे पछितायगो, बहुत घिसेगी हाथ॥
मनुष्य जन्म दुर्लभ है, मिले न बारंबार।
तरुवर से पत्ता गिरे, फिर नहीं लागे डार॥

जगमें सब स्वारथ के यार।
तात माता बेटा बेटी बहिन भाई अरु नारि॥
जब लगि देखे स्वारथ निकले, तब लगि सब का प्यार॥
जब देखें स्वारथ नहिं निकले, कोई न पूछे सार॥
धनवंता बेटा घर आवत, बोलत जै जै कार॥
निर्धन को आदर नहिं देते, यह रीति संसार॥
जब लगि तेरे घटमें स्वासा, तब लग नामाचार॥
स्वांस गये काया कुम्हिलानी घरते देत निकार॥
जो तू करता मेरा मेरा तेरा कौन विचार॥
आशा तजि रे प्रीति जगत् की अपना आप संभार॥

॥ आह्वान ॥

(रचयिता श्रीमती व्रज कुमारी "प्रभाकर")

गज और ग्राह के सदृश तुम्हें मैं ना दौड़ाऊंगा॥
गऊओं के संग बन २ में तुम्हें मैं ना फिराऊंगा॥
भारत में सारथी का काम तुमसे ना कराऊंगा॥
यशुदा की ताड़ना से नाथ! तुमको ना सताऊंगा॥
रण में रथ चक्र को लेकर तुम्हें मैं ना भगाऊंगा॥
तनक सी छाछ के ऊपर तुम्हें मैं ना नचाऊंगा॥
भयंकर दैत्यों का हन्ता तुम्हें मैं ना बनाऊंगा॥
आओ मोहन! चले आओ!! चुपके २ चले आओ!!!
हृदय मन्दिर में मेरे 'व्रज' आकर के शीघ्रतुम आओ॥

मनुष्य में ईश्वरीय शक्ति का दान

(ले० श्री रामकुमार जोषी)

उपहरणं विभवानां संहरणं सकल दुरित जालस्य।
उद्धरणं संसारात्चरणं वः श्रेयसेऽस्तु विश्वपतेः॥

श्रीमत्सच्चिदानन्द, आनन्दकन्द, पूर्णब्रह्म परमात्मा के कृपा कटाक्ष से उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयशील संसार में उद्भिज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज योनियों में अनेक बार इतस्ततः भ्रमण करके प्रकृति माता की छत्र छाया में क्रमशः उन्नत होता हुआ जीव इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाता है और साथ ही आयु, धन, ऐश्वर्य, विद्या, बुद्धि और स्त्री पुत्रादि एवं संसार के भोग्य पदार्थ भी उसी कृपालु जगदीश्वर की कृपा से ही मनुष्य को प्राप्त होते हैं। इस विषय में वेद शास्त्र और बड़े बड़े सन्त पुरुषों का यही मत है कि ऐहिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति कराने वाली शक्ति एक मात्र ईश्वरीय दया है, उसकी कृपा बिना किसी को अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस पर वेद भगवान कहते हैं कि:-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
यजु० अ० ३१ मं० १८।

अर्थ—उस कारण रूप सब से उत्कृष्ट परमेश्वर, आदित्य, विद्या प्रकाश, जगदीश्वर के ज्ञान (पूर्णदया) से ही मुक्ति होती है एवं जन्म मरण रूप बन्धन से छूट जाता है। यही देवयानमार्ग कहाता है, इस मार्ग के अतिरिक्त व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख (मोक्ष) का दूसरा मार्ग नहीं है। इसी से आत्मा तदाकार होता है। उस समय जो ईश्वर की महिमा (शक्ति) है उसको वह जानता है। परन्तु यह मनुष्य थोड़े से संसार के भोगों को प्राप्त होकर आसक्तिवश उस करुणा निधि, जगत् बन्धु, सर्वैश्वर्यदाता, ईश्वर को भूल कर विषय बन्धन में फंस जाता है और ईश्वर की दी हुई शक्ति को काम, क्रोध, लोभ, मोहादिवश अपनी कर उसका विरुद्ध उपयोग करता हुआ संसार के प्रत्येक कामों में मद और मिथ्याभिमान करता रहता है एवं संसार के नश्वर भोग पदार्थों में

आसक्त होकर मैं और मेरा पना के भार से भारान्वित बना रहता है। अतएव यदि मनुष्य अपने ज्ञान और शक्ति पर पूर्ण विचार करे और अनुभव से देखे कि हमारा ज्ञान और शक्तियाँ कितनी मर्यादित हैं तो मालूम होगा कि मनुष्य का बल अति क्षुद्र और क्षण भंगुर है। यह विचार कुछ करता है और हो कुछ जाता है। अपने शरीर ही का दृष्टान्त लीजिये और फिर देखें कि हमारा उस पर कितना अधिकार है। पास पड़ी हुई वस्तु लेने के लिये हाथ लम्बा करते ही यदि लकवा हो जावे तो हाथ ज्यों का त्यों रह जाता है, वह झुक भी नहीं सकता। बोलते २ यदि वाणी की शक्ति बन्द हो जाय तो फिर हम बोल भी नहीं सकते। जिन शक्तियों का मनुष्य अभिमान करता है वे भी क्षण भंगुर हैं। बहुत सी मानवी आशाएं कोई २ आकस्मिक घटना के घट जाने से एक दम धूल में मिल जाती हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि हमारी क्षुद्र से क्षुद्र शक्ति भी ईश्वरीय दान है। इस सिद्धान्त पर केनोपनिषद् में एक सुन्दर कथा वर्णित है:- एक समय देव और दानवों के बीच में घोर संग्राम हुवा, उसमें दैवता ईश्वर की कृपा (शक्ति) से विजयी हुए, विजय प्राप्त होने पर देवता अभिमान के मारे फूले न समाये, वे समझने लगे कि हम अपनी शक्ति से विजयी हुए हैं। जैसे कोई व्यक्ति प्राणान्त दुःख पाकर किसी कृपालु देवता या ऋषि मुनी की कृपा से उस दुःख से छूट कर फिर विषयों में आसक्त होने पर उन देवता आदि के उपकार को भूलकर कृतघ्नी बन जाता है, तैसे ही ईश्वर के बल के प्रभाव से विजय प्राप्त हुए सब देवता भोगों में आसक्त होकर अपने में ईश्वर की दी हुई शक्ति को और ईश्वर को भूल गये और रजोगुण के आवेश में आकर ऐसा अभिमान करने लगे कि-हम ही महाभाग हैं, हमारा ही यश है, हम युद्ध विद्या में कुशल हैं, हमारे समान विश्व में कोई नहीं है. हमारे सामने असुर क्या है। ऐसा मद देवताओं को हुआ तब अन्तर्यामी ईश्वर को जब यह बात विदित हुई तो उन्होंने पिता की समान उन देवताओं का हित करने की इच्छा से उनका मद तोड़ने के लिये एक विचित्र यक्ष का रूप धारण किया जो अलौकिक था देवता उस विचित्र रूप को देख कर चकित हो गये। ईश्वर को नहीं पहचान सके, सब आपस में कहने लगे कि यह यक्ष कौन है? कौन है? सब अपने २ प्रभाव को भूल गये। उनमें से किसी का भी साहस उस यक्ष के पास जाने को नहीं हुआ। तब सब देवताओं ने मिल कर उस विचित्र प्राणी का सम्वाद लेने के लिये अग्निदेव को भेजा। वह ईश्वर के समीप गया। उन्होंने उससे पूछा "भाई तू कौन है, और तेरे में क्या शक्ति है?" उसने कहा "मैं अग्नि हूं और दुनियाँ की समस्त वस्तुओं को जलाकर भस्म कर सकता हूं।" यह सुनकर ईश्वर ने उसके आगे एक तिनका धर दिया और जलाने को कहा। जब अग्नि अपनी सब शक्ति लगाकर भी न जला सकी तो पराजित होकर देवताओं के पास लौट आया, और कहने लगा "मित्रो! यह बला कौन है? मैं नहीं कह सकता।" तब देवताओं ने वायुदेव को भेजा। वायु से भी उपरोक्त प्रश्न किये, पश्चात् उसे भी ईश्वर ने एक तिनका उड़ाने को कहा, पर वह भी अपनी सारी शक्ति लगाकर पराजित हो अपना सा मुँह ले चला आया और अग्नि के समान ही उत्तर दिया। अन्त में देवराज इन्द्र आया। इतने में भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। इन्द्र ने आंख उठाकर ऊपर को देखा तो उसकी दृष्टि में स्वर्ण मयी देवी उमा आई। वह चकित हो उन्हें एक टक

निहारने लगा। अन्त में इन्द्र ने उस देवी से उस अदृश्य हुई मूर्ति के विषय में पूछा। उमा ने कहा कि-"वे तो साक्षात् भगवान थे। तुम्हारी विजय पर तुम्हें घमण्ड करते देख कर तुम्हारा मद तोड़ने के लिये उन्होंने यह विचित्र रूप धारण किया था, और तुम्हें दिखला दिया कि उनकी सहायता बिना तुम निर्बल हो।' अतः अपनी चेतना की सहायता बिना जब हाथ हिलाना भी असम्भव है, आंखों से देखना भी उसकी सहायता बिना दुस्साध्य है, तो फिर मनुष्य किस वस्तु का अभिमान करे। यह सब शक्तियां जिस अलौकिक शक्ति पर अवलम्बित हैं, उसके विषय में उपनिषद् में कहा है कि-वे प्रभू हमारे कर्ण के कर्ण हैं, मन के मन हैं। तैत्तरीय उपनिषद में कहा है कि-इस विश्व के समान विशाल स्वरूप वाले सच्चिदानन्द परमात्मा की यदि सहायता न होती तो कौन हिल झुल सकता था और कौन जीवन धारण कर सकता था। हम तो केवल उधार ली हुई वस्तुओं से अपना व्यवहार चलाते हैं, यदि हमारा ऋण दाता अपना ऋण चुका ले तो हम कैसे भिक्षुक बन जायें? ईश्वर को उससे लिया हुआ ऋण चुकाने की बात तो दूर रही पर जो कुछ हमें उससे प्राप्त हुआ है क्या उसका हम ठीक २ हिसाब भी बतला सकते हैं नहीं निश्चय हमारे हिसाब में बहुत गड़बड़ी निकलेगी क्या कोई छाती ठोक कर निश्चय पूर्वक कह सकता है कि-मैं ईश्वर के सम्मुख बिलकुल ठीक २ हिसाब दे सकूँगा? महात्मा कबीरदास ने कहा है कि:-

चलती चक्की देख कर दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच आ साबत बचा न कोय॥

इस सन्त वाणी पर हम सूक्ष्म विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि कई एक दाणे चक्की में साबत भी रहते हैं जो कि किल्ले के शरण (समीप वर्त्ती) हो जाते हैं, वे नाश नहीं होते हैं। इसी प्रकार इस संसार रूपी चक्की में जो परमेश्वर रूपी किल्ला है एवं चक्की का आधार भूत है, उसके शरण (समीप) में जो जीव रूप दाना चला जाता है, वह साबत रहता है अर्थात् उसका नाश नहीं होता एवं जन्म मरण रूपी दोनों पाटों से पिसता नहीं है। अतः ईश्वर शरणागत का हिसाब ठीक रहता है, उसको ही परमानन्द की प्राप्ति होती है उसी का जीवन धन्य है। अतएव हम मनुष्यों को चाहिये कि-ईश्वर ने जो शक्ति हमें धर्मार्थ, काम, मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रदान की हैं उनको ईश्वर की सेवा रूप कर्तव्य में ही उसका सदुपयोग करते हुए अपने जीवन को सुखमय बनावें।

श्री श्यामसुन्दर से यही प्रार्थना है कि:-

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां।
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः॥
स्मृत्यां शिरस्तव निवास जगत प्रणामे।
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

पूर्व स्मृति

[ल० श्रीमती कुमारी "शान्ति" हिन्दी भूषण]

कालिन्दी के कूल चांदनी अब भी आती।
अपनी सुन्दर दिव्य छटा से चित्त लुभाती॥
किन्तु अचानक आज दुःख से फटती छाती।
पूर्व स्मृति जब वंशी धुनि की फिर आ जाती॥
प्रेम राज्य को याद कर उठती उर में हूक है।
देख देख कर पतन अब होती वाणी मूक है॥

श्री रामकृष्ण

[ले० श्री रामचन्द्रसिंह जी यादव]

श्री स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस जी की पुण्यतिथि के दिन, महात्मा गान्धी जी के प्रिय शिष्यों में से एक आदर्श शिष्य काका कालेलकर ने रामकृष्ण जी के विषय में एक व्याख्यान दिया। व्याख्याता एक सुयोग्य पुरुष हैं और व्याख्यान का विषय एक पवित्र विभूति है, फिर यदि व्याख्यान सुनने वालों के हृदय व्याख्यान सुनते समय आनन्द से विभोर हो गये हों तो उसमें आश्चर्य ही क्या ? व्याख्यान इस प्रकार था:-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

ई० सन् १८३३ या ३४ का समय था, लार्ड मेकालेने ईष्ट इण्डिया कम्पनी से लिखापढ़ी कर भारतवर्ष को पाश्चात्य शिक्षा दिलाने का निश्चय करा लिया था। सच पूछा जाय तो हम भारतवासी उस समय के पहले ही धर्मभ्रष्ट हो चुके थे। इसी कारण तो पारतन्त्र्यशृंखला में जकड़े गये थे। अवस्था ऐसी होने पर भी हमारा बुद्धिभ्रंश इतना नहीं हो गया था कि हम अधर्म को धर्म मान बैठें। परन्तु अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के लिये हम उत्सुक हो गये थे, और अंग्रेजों ने उसे हमें देने का निश्चय कर लिया था, वही पहला दिन था जब कि हमारे जीवन की नींव आहिस्ता २ स्वार्थता स्वच्छता तथा स्पर्धा पर जमने लगी।

परमात्मा का एक ऐसा भी नियम है कि आपत्ति के साथ उसकी निवारक औषधि, और अपाय के साथ ही साथ उपाय भी पैदा हो जाते हैं। जिस बंगाल प्रान्त में अंग्रेजी शिक्षा का सब से प्रथम १८३४ में आरम्भ हुआ, उस ही बंगाल प्रान्त में श्रीरामकृष्ण जी का जन्म हुआ। रामकृष्ण परमहंस, हिन्दू धर्म के शुद्ध तथा जीते जागते स्रोत थे। उन ही दिनों में राजा राममोहन राय ने हिन्दू मुसलमान तथा क्रिश्चियन, इन तीनों धर्मतत्वों का अध्ययन कर सब का सार निकालना आरम्भ किया था, और उनही दिनों प्रत्यक्ष साधनों द्वारा अनुभव करने का काम श्रीरामकृष्ण परमहंस जी ने भी शुरू किया था। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने हिन्दू मुसलमान और क्रिश्चियन इन तीनों धर्मों का प्रत्यक्ष अनुभव कर सब लोगों पर प्रकट किया कि यह सब ही धर्म सत्य हैं। राजा राममोहन राय की तो यह बात थी कि उन्हें उपर्युक्त तीनों धर्मों की संस्कृति के साहित्य से खूब परिचय था; परन्तु रामकृष्ण जी की यह बात नहीं थी। उनका तो इन तीनों संस्कृति के साहित्यों में से एक का भी परिचय नहीं था। बिना शिक्षा के ही धर्म जैसे गहन विषय का भी अनुभव प्राप्त हो सकता है यह श्रीरामकृष्ण जी ने खुद अपने उदाहरण से ही सिद्ध कर बतलाया।

× × × ×

बाल्यावस्था से ही रामकृष्ण जी ने अपनी स्वतन्त्र वृत्ति बना ली थी। सत्यवादी पिता तथा निस्पृह माता की सन्तान और कर भी क्या सकती थी? उनके जमाने में सर्वसाधारण को जो शिक्षा प्राप्त हो सकती थी उसे भी लेने से उन्होंने इन्कार कर दिया। "तेल नोन लकड़ी' तथा अर्थ की प्राप्ति करा देने वाली शिक्षा को लेकर मैं क्या करूंगा? मुझे तो परमात्मा को प्राप्त करना है; और उसे तुम्हारी व्यवहारिक शिक्षा मुझे दिला नहीं सकती यह था उनका कथन। यदि वे शिक्षा प्राप्ति के

चक्र में फंस जाते तो उन्हें मेकाले की ही शिक्षा लेनी पड़ती। अच्छा हुआ उन्होंने वह नहीं ली। परमात्मा की इच्छा तो उन्हें अशिक्षित रख उनके द्वारा समूचे बंगाल को शिक्षा दिलाना था। आज दुनिया का बड़ा हिस्सा उन्हें अवतार समझ पूजनीय मानता है इसका मूल यहीं पर है।

श्रीरामकृष्ण जी को हम अवतार मानें या न मानें यह भी एक चर्चा का विषय हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वरीय तत्व तो रहता ही है; फिर यह ईश्वरीय तत्व अधिक प्रमाण में दिखलाई दे उस जगह अवतार की कल्पना करना मेरे ख़याल से गलती नहीं है। जिन्होंने अपना स्वयं का उद्धार किया, इतना ही नहीं जो दूसरों का भी उद्धार कर सकते हैं उन्हें हम ईश्वर का अवतार क्यों न मानें, इसमें शंका ही कहां? ख़ास प्रकार की मानवी दुर्बलता, विशेष प्रकार की न्यूनता दूर करने का सामर्थ्य जिनमें प्रकट होता है, दिखलाई देता है। उन्हें अवतार मानना योग्य है ऐसा कई एक विद्वानों का मत है। इस दृष्टि से भी तो श्रीरामकृष्ण जी को हम अवतार मान सकते हैं। तथापि मैं अपने स्वार्थ के लिए रामकृष्ण जी को अवतार मानने को तैय्यार नहीं हूं। अवतार का अर्थ ही यह है कि मनुष्य मात्र की दया के वशीभूत होकर उन्हें ऊपर को उठाने वाला देहधारी ईश्वर, महज मनुष्य नहीं हो सकता। ऐसी विभूति से हमें सहायता मिल सकती है परन्तु उसे अवतार मानने के कारण उसका अनुकरण करने की भावना हममें उत्पन्न नहीं हो सकती। श्रीरामकृष्ण जी को अवतार मानना यानी उन्होंने कैसी कैसी लीलाएं कीं, कौन कौन से चमत्कार कर दिखलाये, हमसे वे क्या चाहते थे, विधि-पूर्वक उनकी शरण में जाने से हमें बिना प्रयास ही क्या मिल सकता है ये ही विचार हमारे सामने आ जाते हैं। इसी लिए तो मैं उन्हें अवतार नहीं मान सकता।

परन्तु उन्हें यदि हम मनुष्य समझें तो, उनके पास कर्तृत्व का सरमाया कितना था, उसका उपयोग उन्होंने कैसा और कितना किया, खुद के दोष नष्ट करने के लिए उन्होंने कैसा अथक प्रयत्न किया, अपने पुरुषार्थबल पर उन्हें अध्यात्मिक ऐश्वर्य और पूर्णत्व जैसा प्राप्त हुआ यह विचार हम पर अच्छा असर डालते हैं। मनुष्य मात्र को धैर्य प्रदान करने वाले, हिम्मत दिलाने वाले दो वाक्य हमारी भाषा में बड़े अच्छे हैं "परित्राणाय साधूनां, संभवामि युगे युगे" और दूसरा वाक्य है "नर करनी करे तो नर का नारायण होय" इन दो वचनों में से पहिले के बनिस्बत दूसरा अधिक तेजस्वी तथा उपकारक है यह निश्चित है।

श्री रामकृष्ण जी में बाल्यावस्था में वर्णाभिमान भरा हुआ था। रानी रासमणी के मन्दिर में भोजन नहीं कर सकता यह उनकी अपनी भावना थी। परन्तु जब वे अध्यात्म साधना करने लगे, तब यह झूठा अहंकार नष्ट करने के लिये रासको पास पड़ोसके पखाने साफ़ करने का तथा अन्त्यजों के आंगन अपने सिर के बालों से साफ़ करने का काम उन्होंने आरम्भ किया। धन और मिट्टी का ढेला यह समान है, यह वृत्ति अपने हृदय पर अंकित करने के लिए रुपया और मिट्टी का ढेला वे एक ही साथ हाथ में ले नदी में फेंक दिया करते थे। अन्त्यजों द्वारा ईश्वर के पवित्र नामों का उच्चारण करवा कर उनके हाथ का पानी पीने वाले एक कट्टर वैष्णव की वे बहुत सराहना करने लगे। अन्तःकरण से अपवित्र विचार हटा कर यदि फिर से ऐसे विचार दिलमें आयें तो इस

शरीर का अन्त कर दूंगा' यह उन्होंने निश्चय कर लिया था। प्रत्येक धर्म के विद्वानों द्वारा उस धर्म की साधना समझ कर उसका उन्होंने खुद अनुभव किया। तब फिर सब ही धर्म सत्य हैं यह उन्होंने जगत् पर प्रकट किया। लोगों को उपदेश दिया। शुरु शुरु में काली माता का प्रसाद समझ वे मांसाहार भी किया करते थे मगर बाद में उन्होंने वह भी त्याग दिया। इतना ही नहीं परन्तु पूजा के लिये बिल्व पत्र और फूल भी तोडना उन्होंने छोड़ दिया। "यह फूल जहाँ पर निर्माण किये गये हैं वहाँ पर क्या वे ईश्वर को अर्पण नहीं किये गये हैं। वहां से उन्हें तोड़ कर क्यों अलग किया जाय ?" यह प्रश्न वे किया करते थे। किसी रहस्य के समझने में जब तक उनका पूर्ण समाधान न होता वे तब तक उदासीन ही रहते। शाम के बजत एक दिन व्यतीत हो चुका परन्तु आज भी ईश्वर प्राप्ति नहीं हुई, इस तरह कह कर वे फूट फूट कर रोते। इस प्रकार की साधना करते करते उन्हें स्फूर्ति हुई कि सर्वत्र व्यापक एक ही ईश्वर है, तब वे शान्त हो गये। उनका जीवन सार्थक हुआ। नर से नारायण बन गये। दुनियां उन्हें परम हंस कहने लगी।

यह व्यवहारिक जगत् का नियम है कि परमात्मा के लिये दीवाना बने हुए मनुष्य को वह अपने परिवार में स्थान नहीं दे सकता। रामकृष्ण परमहंस को दीवाना समझ ठीक ठीक रास्ते पर लाने के लिए उनके रिश्तेदार सगे सम्बन्धियों ने उनका विवाह कर देने की ठानी। तब तो उन्होंने ही खुद एक पाँच बरस की सात्विक वृत्ति की लड़की ढूंढ निकाल कर विवाह के लिए पसन्द की। विवाह तो उन्होंने किया परन्तु वे जैसे पहले दिन थे वैसे ही रहे। युवावस्था को प्राप्त कर लेने पर उनकी पत्नी, अपने पति की प्रत्यक्ष अवस्था देखने के लिए उनके पास पहुंची। रामकृष्ण ने 'माता' कह कर उसकी पूजा की। शारदा माताने कहा "आपने ईश्वर प्राप्ति का मार्ग स्वीकार किया है, आपको उस मार्ग से पीछे खींचने वाली अविद्या माया मैं भी बनना नहीं चाहती। आपका सान्निध्य प्राप्त कर आपकी मैं सेवा कर सकूँ यही मुझे भिक्षा दीजिए।" शारदा माता ने अन्त तक उनकी सेवा कर शान्ति प्राप्त करली। और रामकृष्ण जी के इहलोक छोड़ देने के बाद उनकी की मानस पूजा कर शेष आयुष्य व्यतीत किया। प्रताप चन्द्र मजूमदार जैसे ब्रह्मसमाज के भक्त, रामकृष्ण जी पर आक्षेप करते हैं कि "रामकृष्ण जी ने इस तरह अपनी पत्नी के साथ अन्याय तथा क्रूरता का व्यवहार कर उसे विधवा जैसी अवस्था में रक्खा।" भारतीय आदर्श की दृष्टि से शारदा माता की अवस्था दयाजनक नहीं थी, प्रत्युत ईर्ष्या करने योग्य थी। जब कि कोई भी स्त्री पुरुष, दम्पति अपने विकारों का दमन कर संयमी जीवन व्यतीत करना चाहते हों तो उस स्त्री की दयनीय अवस्था क्यों समझी जाय ?

वासना तृप्ति मनुष्य मात्र के हक की वस्तु है, और वासनातृप्ति में ही जीवन की सफलता है यह तत्वज्ञान हमारा नहीं। वासना से आत्मा घिरा हुआ है और इसलिए तो उसे कष्ट होता है। वासना नष्ट कर आत्मा को मुक्त करने पर खुद का आनन्द भोगना ये ही तो हमारे जीवन का मंत्र है। जब मैं कलकत्ता गया था, शारदा माता के दर्शनों को गया था। उस समय वे रामकृष्ण की मूर्ति की पूजा कर रही थीं। मुक्तकेशा और एक ही शुभ्र वस्त्र धारण किये हुई थीं। सुदीर्घकाल पर्यन्त ध्यान करने से आँखों में जो एक तरह का तेज

चमकता है उसकी तरफ़ स्वाभाविक रीति से ही मेरा ध्यान आकर्षित हुआ। उनके चेहरे पर पवित्रता, शान्ति प्रसन्नता तथा मातृवात्सल खूब विलास कर रही थी। पतिदेव की पूजा में उनकी तन्मयता देख मुझे तो वे प्रत्यक्ष दुर्गा देवी ही प्रतीत हुई।

× × × +

स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा लिखित पुस्तक से ही लोगों को रामकृष्ण जी के विषय की ज्ञान कारी हुई है। परन्तु उनका प्रथम परिचय तो "मास्टर आफ श्री रामकृष्ण" इस किताब से हुआ है। यह पुस्तक लिखने वाला व्यक्ति कौन होगा, यह प्रश्न बहुतों के मन में खड़ा हुआ होगा। पुस्तक पर लेखक के स्थान पर सिर्फ इतना ही चिन्ह है। उनका नाम महेन्द्र गुप्त था। कलकत्ते में उनके दर्शनों को भी हम गये थे। उनकी वह भव्य तथा भक्ति-नम्र मूर्ति देख हमें प्रत्यक्ष रामकृष्ण जी के दर्शनलाभ का समाधान प्राप्त हुआ। वे ही तो रामकृष्ण जी के चरित्र लेखक थे। रामकृष्ण जी के विषय में अनेक कथायें उनके मुँह से हमें सुनने को मिलीं। उनकी स्मरण-शक्ति गज़ब की थी। जब कभी हम उन्हें कुछ पूछ बैठते वे अपनी नोटबुक के पृष्ठ उलटते और कुछ ठहर जाते, ध्यानस्थ से हो जाते। एक मिनिट आंखें बन्द कर लेते और तुरन्त रामकृष्ण जी के पुराने प्रसंगों पर कुछ कहने लगते। श्रीरामकृष्ण कहाँ बैठे थे उनका मुंह किस दिशा की ओर था, उनके पास कौन कौन बैठे थे, बाद में कौन आये, बीच में से ही कौन कौन उठ कर चले गये यह बातें वह सिलसिले से कहने लग जाते। रामकृष्ण जी का संभाषण-कहे हुए वाक्य तो अक्षर अक्षर कह डालते। उनकी गुरु भक्ति इतनी उत्कट थी कि एक अक्षर की ग़लती से भी उन्हें गुरु-द्रोह पातक का दुःख होता। उनके जैसा यथार्थवादी चरित्रकार शायद ही कोई हो।

× × × ×

कहा जाता है कि परमहंस जी के ३६ शिष्य थे। हर एक को उन्होंने विविध प्रकार की शिक्षा दी थी। किसी को उन्होंने ज्ञान मार्ग बतलाया था तो किसी को भक्ति मार्ग। जब कभी वे किसी एक शिष्य को उपदेश देते उस समय दूसरे को वहां ठहरने नहीं देते थे। किसी एक शिष्य के साथ अध्यात्म रामायण का पाठ हो रहा था। राखाल बाबू (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) वहाँ आ धमके। परमहंस ने कहा "यह तुम्हारे लिए नहीं है तुम यहां से बाहर चले जाओ।"

श्री रामकृष्ण परमहंस केवल एक ईश्वर भक्ति ही जानते थे। परमात्मा को पहचानो, उसे प्राप्त करलो, यही वे हमेशा कहा करते। तब भी अपने उदाहरण से इस ज़माने का 'युग धर्म' वे संसार को सिखला गये हैं।

(१) उनका सब से पहला सन्देश 'सब धर्मों का ऐक्य' यह था सब धर्म एक ही ईश्वर की उपासना करते हैं, सब एक ही निश्चित स्थान पर आ पहुंचते हैं, सब के ही मार्ग सत्य हैं यह उन्होंने स्वानुभव से अधिकार युक्त वाणी में कहा है। किसी महाशय ने उनसे पूछा था कि "शाक्त धर्मी वाममार्गी भी क्या सत्यमार्गी कहला सकते हैं?" उत्तर मिला 'मन्दिर में जाने के लिए अनेक मार्ग रहते हैं। महाद्वार का प्रशस्त मार्ग त्याग कर छोटे गन्दे मार्ग से, गली कूंचे से जाने की आवश्यकता ही क्या है?"

(२) उनका दूसरा संदेश मनुष्यमात्र के ध्येय के विषय में है। मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति का

ही विचार करना चाहिए. आत्म शुद्धि करनी चाहिए। फिर तो जो कुछ भी इच्छा करे प्राप्त हो सकता है। पेड़ हाथ आ जाने पर डालपात खुद बखुद हस्तगत हो जाते हैं।

(३) ईश्वर प्राप्ति के साधन के लिए कनक और कान्ता का त्याग करने को उन्होंने कहा है। जब तक पुरुष स्त्री की ओर पत्नीभाव से देखता रहेगा या स्त्री पुरुष को पतिभाव से देखती रहेगी तब तक मोक्ष प्राप्ति की आशा ही नहीं। काम और लोभ यह मोक्ष मार्ग के रास्ते में बड़ी रुकावटें हैं।

(४) श्री रामकृष्ण जी महाराज के जितने भी साधना-क्रम थे अहंकार-विनाशी थे। अहँकार नाश के लिए ही तो उन्होंने अन्त्यज सेवा कर अपने को 'शुचधर्म' सिखलाया था। कृष्ण किशोर नाम के एक वैष्णव की बात वे अपने शिष्यों को हमेशा सुनाया करते थे। कृष्ण किशोर एक श्रद्धावान् भक्त थे। वे वृन्दावन की यात्रा को जा रहे थे। रास्ते में उन्हें ज़ोरों से प्यास लगी। एक कुएं पर किसी एक आदमी को पानी भरते देख उन्होंने पीने के लिए पानी माँगा। उसने कहा मैं अन्त्यज हूं. मेरे हाथ का दिया पानी तुम कैसे पी सकोगे? कृष्ण किशोर ने कहा "तू परमात्मा का नाम स्मरण कर और मुझे पानी खींच कर पिला दे" उसने वैसा ही किया। और उस ब्राह्मण कृष्ण किशोर ने अहंकार रहित होकर अन्त्यज के हाथ का पानी पी लिया। कृष्ण किशोर के घर श्री रामकृष्ण जी महाराज अध्यात्म रामायण श्रवण करने जाया करते थे।

(५) जिन्होंने कनक-कान्ता का परित्याग किया था, जिन्हें अहंकार छू तक नहीं गया था, उनके दिलमें सामाजिक उच्चनीच भाव कहां से आ सकता है? उनकी दृष्टि में तो राजा रंक सब एक ही से थे। राजा सुरेन्द्र नाथ टागोर को वे कभी भी राजा नहीं कहा करते थे। परमहंस ने एक दिन उनसे कहा "मैं तुझे राजा कह कर नहीं पुकारा करूंगा। 'राजा' कहने से असत्य का भागी बनूँगा।"

(६) परमहंस जी में जो खास बात थी वह शिष्य-प्रेम था। गुरु के पीछे दीवाने हुए शिष्य जहां तहां देखने में आते हैं, परन्तु शिष्यों के लिए दीवाने बने हुए गुरु एक रामकृष्ण ही थे। दयामय परमात्मा भक्तों के आधीन रहता है। वैसे ही परमहंस शिष्यों के आधीन रहते थे।

× × × ×

इस तरह परमहंस जी ने अपना सब जीवन ईश्वर भक्ति तथा लोक कल्याण में व्यतीत किया। रात और दिन मुमुक्षुजनों को उपदेश करते उनके गले में व्रण हो गये थे। बोलने के लिए वैद्य और डाक्टरों ने उन्हें मना कर रक्खा था। मगर लोग क्यों मानने लगे, सत्पुरुष का उपदेश सुनने लोग आते ही रहते, और परमहंस किसी को भी निराश नहीं करते थे। उनका प्रवचन अखण्डित चलता ही रहता था। परमहंस जी की बीमारी का हाल सुन लोग दूर दूर से बड़ी संख्या में। उनका यह आखिरी दर्शन समझ कर-आने लगे। प्रवचन ज़ोरों चलने लगा। आखिर १६ अगस्त १८८६ की रातको श्रीरामकृष्ण महाराज ने उस यज्ञमें अपनी पूर्णाहुति दे डाली।

× × × ×

शरीर नश्वर है, वह तो यथाकाल नष्ट होने ही वाला है। परन्तु अपने समाज की दयनीय दशा देख दुःख होता है। साधु सन्तों के बताये रास्ते से चलने वाले थोड़े ही होते हैं। परन्तु महात्माओं के चरणों को स्पर्श कर, उनके दर्शन

कर उनके शब्द कानों से सुन कर, उनके दिये प्रसाद को खाकर, उनके नाम का जय घोष कर अपने को 'पावन' और 'कृतार्थ' समझने वाले ही बहुत होते हैं। अनायास जो मिल सकता है उसकी प्राप्ति की इच्छा ज़ियादा रहती है। कूंजड़े से सब्ज़ी खरीदते समय मुफ्त में कुछ अधिक अपने पल्ले पड़ जाने की मन की प्रवृत्ति में और उपरोक्त प्रकार से मोक्ष प्राप्ति करने की प्रवृत्ति में कोई फर्क नहीं दिखाई देता है।

समाज में लोक सेवा करने वालों की संख्या बढ़ना अत्यन्त ज़रूरी है। परन्तु उसके साथ ही साथ सेवा करालेने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। सेवकों को उनका सेवा धर्म समझाया जाकर उनका बलि दिया जा रहा है। पत्नी हो या देश सेवक साधुसन्त हो, सब उपयोग्य वस्तुएं हैं यह भावना अन्तःकरण में जड़ पकड़ रही है। साधु सन्तों से हम आश्वासन प्राप्त करें, उनसे साधनों के तरीके सीखें, उनके सहवास से वासनाओं पर काबू पाने की शक्ति हम अपने में बढ़ावें खुद की कृपणता नष्ट कर हम धर्म वीर बनें। परन्तु यह तो है ही नहीं। अनायास ही ऐहिक तथा पारलौकिक सुखोपभोग प्राप्ति की आशा करना योग्य नहीं है।

परमहंस जी का उपदेश उनके सच्छिष्य स्वामी विवेकानन्द जी ने देश देशान्तर में फैलाया है। अंग्रेजी शिक्षा तथा संस्कृत से भुलाए हुए हम लोगों पर स्वामी विवेकानन्द जी के अंग्रेजी लेखों द्वारा ही इष्ट परिणाम होना स्वाभाविक था। परमहंस जी के शुद्ध आध्यात्मज्ञान को पचाने की शक्ति जिनमें नहीं थी, उनके लिए पाश्चात्य तत्वज्ञान मिश्रित विवेकानन्द मिक्सचर बड़ा मौजूद रहा। तभी तो वे पचा सके। विवेकानन्द जी ने परमहंस का आध्यात्मज्ञान तत्वज्ञान के स्वरूप में प्रकट किया और जन सुधार तथा जीवन सुधार कैसा हो सकता है यह उन्होंने बतलाया। उस ही सूत्र के आधार पर भगिनी निवेदिता ने हिन्दुस्तान का सामाजिक जीवन तथा ऐतिहासिक राष्ट्रीय जीवन का रहस्य हमें स्पष्ट कर बतलाया। आज रामकृष्ण मिशन के कई सेवाश्रम अद्वैताश्रम तथा कई मन्दिर रामकृष्ण परमहंस का उपदेश कायिक वाचिक तथा मानसिक तरीके से जनता को दे रहे हैं। जिन्हें भूख होगी वो उसे स्वीकार करेंगे। जो मुमुक्षु हो वेंही उसका रहस्य समझने का प्रयत्न करेंगे। जिनके हृदय में सच्ची आग सुलगी होगी वे ही उसका उपयोग करेंगे।

योग-साधन

[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

३३६. प्रकृति बल पूर्वक इन्द्रियों को अपने विषयों की तरफ प्रेरणा करती है। मैं साक्षी हूं, मैं चैतन्य हूं, यह ज्ञान है। कर्म ज्ञान की अग्नि में भस्म हो जाते हैं।

३३७ मेरा ख्याल है तुमने उपरोक्त भाव को भले प्रकार समझ लिया होगा। परन्तु मैं आपको फिर सचेत करता हूं। माया, मोह और अविद्या की शक्ति बलवान है। तुम बहुधा आत्मिक भाव और आध्यात्मिक उद्देश से इधर, उधर हो जाते हो इसलिए चित्त पर बार बार अभ्यास करने से ही प्रभाव पड़ता है॥

३३८. गीता के १५ वें अध्याय का क्षर पुरुष पांच तत्वों का बना हुआ स्थूल शरीर है। अक्षर

पुरुष लिङ्ग शरीर है जो आवागमन का कारण है। कभी स्वर्ग में जाता है और वहां कर्मों के फल भोग कर फिर संसार में आता है। पुरुषोत्तम पर ब्रह्म और शुद्ध ब्रह्म सत्-चित् आनन्द अर्थात् पर वस्तु है।

३३६. अज्ञानियों की दृष्टि से ज्ञानी को भी प्रारब्ध होता है परन्तु जीवन-मुक्त की दृष्टि में न तो प्रारब्ध है और न ही स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर हैं क्योंकि वह अपनी सत्ता को ब्रह्म ही की सत्ता समझता है।

३४०. वह योगी जो गुफा में बैठकर अपने चित्त को संकल्प रहित कर लेता है उस मनुष्य की अपेक्षा अधिक काम करता है जो प्लेटफार्म पर व्याख्यान देता है। ऐसा योगी संसार के एक २ परमाणु में अपने विचार को प्रविष्ट कर देता है। ऐसा योगी बिलकुल स्वार्थ रहित होता है। अज्ञानी, संसारी जन मूर्खता से ऐसे योगियों को स्वार्थी बताते हैं। यह बड़ी भूल है। उन बारह बुद्धों ने जो गुप्त रहे साक्षी मुनि गौतम (बुद्ध) की अपेक्षा अधिक काम किया जिसने संसार में लोक संग्रह के लिए काम किया था।

३४१. ओ३म् अन्तरात्मा, ज्ञानों का ज्ञान और सूर्यों का सूर्य, एक मात्र सत्ता और अन्तिम ध्येय जीवित जाग्रत सत्य जो प्रत्येक नाम और रूप के पीछे छिपा हुआ है और जो सब के मनों के पीछे है अय शुद्ध परमात्मन मुझ को शुद्धता ज्ञान और आनन्द प्रदान कर।

३४२. किसी भी एकान्त अध्यात्मिक आश्रम में जैसे कि जिला गोदावरी में तोतापली पहाड़ी का शान्ति आश्रम गृहस्थी आदमियों के लिए कुछ घण्टे भी आकर रहना बहुत ही लाभ दायक है। वहां रहने से अध्यात्मिक उन्नति और विकाश बहुत होगा। वहां रहने से चित्त में नवीन शान्ति, सत्ता शक्ति प्रेम और आनन्द का अविर्भाव होगा। वहां कुछ समय रहने से भी चित्त में ऐसी आध्यात्मिक शक्ति का संचार होगा कि जिसके बल से संसार संग्राम को जीतने में बड़ी सहायता प्राप्त होगी। विज्ञान, तर्क, गणित, भूगर्भ विद्या, आदि बहुत ही चित्ता अकर्षक हैं परन्तु मनो विज्ञान उनसे भी अधिक कर्षक है। यह विद्या बहुत ही महत्व की है और ध्यान, देने योग्य है परन्तु आत्मा या ब्रह्म या अन्तरात्मा बहुत ही आनन्द दायक है। यह अध्यात्मिक विज्ञान है। यह विज्ञानों का विज्ञान है। यह ब्रह्म विद्या है यह परा विद्या है। पराका अर्थ है उत्तम व उच्च। विद्या का अर्थ है सत्यज्ञान अर्थात् अन्तरात्मा का ज्ञान।

३४३. एक घण्टे प्रातःकाल और एक घण्टे सायंकाल अवश्य ध्यान करना चाहिये। यह प्रारम्भिक जिज्ञासुओं के लिए है। ध्यान का समय धीरे २ बढ़ाना चाहिए। दूसरा महत्व का काम दिन भर ब्रह्म भाव का बनाए रखना है। यह ध्यान नित्य, निरन्तर चैतन्य रूप में अखण्ड धारावत बना रहना चाहिए। हमको चाहिए कि अहं ब्रह्मास्मि के भाव को एक क्षण भी चित्त से दूर न करें। परमात्मा को भूल जाना ही वास्तविक मृत्यु है। यह ही आत्म हत्या है। यही आत्म द्रोह है और यही सब से बड़ा पाप है।

३४४ स्थूल स्वार्थ, स्थूल इच्छाएं, और स्थूल अहंकार साधन से नष्ट हो जाते हैं। निरन्तर प्रयत्न द्वारा सूक्ष्म और गुप्त इच्छाओं, अहंकार, मद और अभिमान को दूर करना चाहिए। इनके बीज को समाधि या सहज निष्ठा द्वारा जला देना चाहिए ऐसा करने पर ही तुम पूर्ण स्वरक्षित रह सकते हो और आवागमन के चक्र से छूट

सकते हो।

३४५. संसार की ममता को बनाए रखने के लिए एक तिनका भी इतना ही आवश्यक है जितना कि शंकराचार्य। जिसने इस बात को समझ लिया है और इस सत्य सिद्धान्त को अनुभव कर लिया है वह मनुष्यों का सन्मान करता है और सब से प्रेम करता है और ईर्षा द्वेष से रहित होकर बुराई बड़ाई के मिथ्या भाव से बिलकुल छूट जाता है।

३४६ अपने चित्त में यह अनुभव करो कि संसार में जितने पांव हैं सब विराट भगवान् विष्णु के पाँव हैं। इस तरह समझने से उसी क्षण आत्म ज्ञान की प्राप्ति होगी। पूरा प्रयत्न करो।

३४७. जप करने की मात्रा बढ़ाओ। २०० माला से ५०० माला तक नित्य जप करो। जिस तरह तुम प्रातः सायंकाल भोजन करने और चाय व कहवा पीने को उत्कण्ठित रहते हो इसी तरह भजन के लिए उत्साहित रहो। न मालूम मृत्यु कब आ जावे वह एक क्षण का नोटिस दिए बिना ही आ सकती है। हंसते हुए राम का नाम लेते हुए उसका स्वागत करने को सदैव तय्यार रहो। मुख से राम राम कहते हुए उस अनन्त सनातन ज्ञान स्वरूप आत्मानन्द में समाजाओ।

३४८. अध्यात्मिक साधनों, अध्यात्मिक संस्कारों और शुभ वासनाओं द्वारा अपने हृदय के भीतर छिपे हुए परमात्मा को जाग्रत करो। अभ्यास करो, ध्यान करो, एकाग्र चित्त करो। नित्य निरन्तर आत्मिक भाव को सचेत रक्खो। प्रयत्न सचाई से होना चाहिए। तीव्र वैराग और तीव्र मोक्ष की आकांक्षा होनी चाहिए॥

३४९. शुभस्य शीघ्रं। जो शुभ काम हो उसे शीघ्र करना चाहिए। देर करना हानि कारक है। मन बड़ा चंचल है न मालूम यह कब बदल जावे। जब कभी तुम कोई शुभ कर्म्म करना चाहते हो तो शैतान तुमको उसके करने से रोकता है, इसलिए सदैव सचेत रहो। जब कभी तुम कोई बुरा काम करना चाहते हो तो अन्तःकरण तुमको ऐसा करने से रोकता है परन्तु अहंकार वश तुम अन्तःकरण की आवाज पर ध्यान नहीं देते। यह मनुष्य निश्चय दया के पात्र हैं जो विषयों के आधीन हो जाते हैं। परमात्मा ऐसे जीवों को शुद्धता, आत्मिक शक्ति, सत्वगुण, शान्ति और पवित्रता प्रदान करे।

३५०. प्रत्येक मनुष्य में, प्रत्येक पदार्थ में, प्रत्येक क्रिया में, सम्मति में, विचार में, तरीके में, कण में और परमाणु परमाणु में रामका अनुभव करो।

३५१. अपनी स्त्री और बच्चों के मोह का परित्याग करदो। मोह धोखा और अपवित्र प्रेम है। मोह वश तुम असत्य पदार्थ को सत्य की भान्ति देखते हो, दुःख को सुख समझते हो, पवित्र आत्मा के स्थान में अपवित्र शरीर का ध्यान करते हो। इस दुःखमय अवस्था में तुम्हारी स्थिति बनाए रखने के लिए मोह रूपी शत्रु ही मुख्य कारण है। जब तुम निर्मोही होजाओगे तो निश्चल तत्व को प्राप्त होजाओगे। चित्त शान्त होजावेगा मन आत्मा अर्थात् अपने स्वरूप में स्थिर हो जावेगा। तुम जीवन मुक्त होजाओगे।

३५२. आसक्ति रहित जीवन व्यतीत करो और जल में कमलवत रहो। आसक्ति ही मृत्यु है आसक्ति ही आवागमन का कारण है। मन को सावधानी से शिक्षित करो। अनन्त आनन्द आत्मा जो तुम्हारे हृदय में निवास करता है उसके साथ आसक्ति करो।

३५३. सब पर दया करो, ईमानदार बनो, जन्म धारण करने का विचार चित्त से निकालदो, जन्म

दुःख का कारण है। कार्य का नियम चक्रदार है। कार्य और उसका फल अनिवार्य है।

३५४. परमहंस सन्यासियों का मान करो, यह ब्रह्म विद्या अर्थात् वेदान्त ज्ञान के पूर्ण भण्डार हैं पर हितकारी यह परिव्राजक हैं जो आत्मा के अमूल्य ज्ञानको, जिसके द्वारा जीव की उन्नति होती है और जिसके द्वारा अनन्त आनन्द और अमरत्व की प्राप्ति होती है संसार में फैलाते हैं। उनको किसी पदार्थ की आवश्यकता नहीं है। उनको एक रोटी और थोड़ी लस्सी (छाछ) काफी है। उनको अपना मन दे दो। वह तुम्हारे दास हैं, वह तुम्हारे मन को सत्य-ज्ञान से भर देंगे। यही ऋषि हैं जो तुम्हारी आसुरी और राजसिक प्रकृति को बदल सकेंगे और तुम्हारे अपवित्र संस्कार और वासनाओं को पूर्णतया परिवर्तित कर देंगे। श्रद्धा भक्ति से हाथ जोड़ कर उनको प्रणाम करो और भक्ति में निमग्न हो जाओ॥

३५५. परमात्मा में निवास करो और उसकी सत्ता व महिमा को इस तरह अनुभव करो कि वह हमारे चारों तरफ, अन्दर और बाहर, ऊपर और नीचे फैली हुई है। वह कितना दयालु और प्रेमी है। उसने अपनी सत्ता से हमारे जीवन को भर रक्खा है प्रेम और अध्यात्मिक आनन्द से उसने हमको परिपूर्ण कर रक्खा है। उसमें सदैव निवास करना बड़े महत्व की बात है। उसके साथ तादात्म्यता करना बड़े गौरव की बात है।

३५६. दिन २ घण्टे २ और मिनट मिनट अध्यात्मिक जीवन को उन्नत करो। समय को नष्ट मत करो। समय बड़ा अमूल्य है। पड़े रहना मृत्यु है। परदों को एक एक करके तोड़ दो। एक २ परदे के भीतर प्रवेश करो। अविद्या अर्थात् अज्ञान, काम अर्थात् इच्छा और कर्म्म तीनों ग्रन्थियों को भेदन करदो। चित्त को साफ करो और ईर्षा, मोह और अहंकार की कीचड़ को धो डालो॥

३५७. मेरे प्यारे जिज्ञासुओ, ज्ञान पुत्रो, अमृत पुत्रो, अमर सन्तान, अनन्त आनन्द स्वरूप अय सौम्य! मैं सदैव तुम्हारे साथ हूं। भय मत करो। हम एक हैं। तुमको शान्ति प्राप्त हो। मेरे आत्मा का ज्ञान तुम सब पर प्रकाशित हो। मेरी शान्ति तुम्हारी आत्माओं पर आशीर्वाद के रूप में बर्षे। वह दैवी ज्योति अर्थात ज्ञान कभी मन्द न हो। जो अज्ञान तुम्हारे चारों तरफ छाया हुआ है उसको दूर करने में उस अनन्त परमात्मा की विभूति तुम्हारे द्वारा प्रकाशित हो। वह दिव्य ज्ञान तुम्हारे अध्यात्मिक पथ को प्रकाशित करे। तुम्हारे मन और हृदय शान्ति से परिपूर्ण हो जावें॥

३५८. सत्यं वद, धर्मं चर, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवा भव, अतिथी देवो भव।

३५९. तुम्हारा अस्तित्व शान्ति और समता से परिपूर्ण हो जावे। अपना कर्तव्य पालन करने के लिए परमात्मा तुमको बुद्धि, शक्ति, शान्ति, प्रेम और आनन्द प्रदान करे। आत्मा का आनन्द तुम्हारे मार्ग को प्रदीप्त करे, और तुम्हारे पावों के पंख लगजावें। तुम्हारी वाणी शक्ति और शोभा से भरजावे। तुम संसार में परमात्मा की इच्छा को और उसके राज्य को स्थापन करने का प्रयत्न कर सको। उसके पवित्र मन की महिमा गाओ, और श्रद्धा भक्ति से उसके नाम का जप करो॥

३६०. सन्तोष रक्खो, शान्त बनो, उच्च भाव बनाए रहो। प्रेम और सहानुभूति रक्खो, एक दूसरे को पहचानो। परमात्मा तुम्हारे ज्ञान को प्रदीप्त करे।

१६१. मेरा प्रयत्न यह है कि तुम्हारे दिलों पर अध्यात्मिक ज्ञान की छाप लग जावे और तुम्हारे

चित्त में दिव्य ज्ञान का प्रवाह बह उठे और तुम इस योग्य हो जाओ कि अपनी वाणी और लेखनी द्वारा सत्य का प्रकाश कर सको। मैं यह चाहता हूं कि तुम्हारे मनों में दिव्य ज्ञान का प्रवाह निरन्तर बहता रहे और जो तुमसे मिले उसको ही उस ज्ञान का आनन्द देसको।

३६२. प्रेम, नम्रता और दैवी दया का भाव उत्पन्न करो। तुम्हारे चित्त उन उच्चभावों से भर जावें जिनसे बुद्ध और ईसा के हृदय भरे हुए थे।

३६३. भगवान राम के चरणों में अपने चित्त को लगाओ। ऐसा अनुभव करो कि तुम्हारे सांस लेने में, दिल धड़कने में, और आंखों की रोशनी में जो कि आत्मा की खिड़कियां हैं वही प्रकाशित हो रहा है। इस तरह तुम्हारा जीवन और कर्म्म दिन२ पूर्णता में विकसित होता चला जावे।

३६४. मित्रता संसार का स्वभाव है। यदि संसार में मित्रता न हो तो संसार जेल खाना, बन जावे। कला, संगीत, विज्ञान, काव्य सब एक ही अव्यक्त आत्मा के व्यक्त रूप हैं, तुम संगीत, कला और विज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव कर सकते हो, सब वस्तुओं में और सब स्थानों में केवल आत्मा को ही अनुभव करना चाहिए। भिन्नता में भी एकता को लगना चाहिए, भिन्नताओं के पीछे एकता ही विराजमान है। योग दृष्टि, दैवी बुद्धि और ज्ञानचक्षु का विकाश करो और शान्ति और अनन्त आनन्द में निवास करो।

३६५. प्रारब्ध का मतलब यह नहीं है कि हमको गत कर्म्मों की भूलों, दोषों और पापों के कारण यह अच्छे बुरे भोग मिले हैं बल्कि इसका प्रयोजन तो यह है कि तुम को आत्मिक ज्ञान की शिक्षा दी जावे ताकि परमात्मा के नियम में तुम भी उचित स्थान प्राप्त करके ठीक काम कर सको। सब कर्म अहंकार रहित निष्काम भाव से करो और श्रद्धा भक्ति से उनको प्रभु के चरणों में समर्पण कर दो। इसको ईश्वर प्रणिधान कहते हैं। इसके फल स्वरूप समाधि की प्राप्ति आप ही हो जावेगी।

३६६. जब मान सरोवर झील से कैलाश पर्वत को देखोगे तो तुमको विचित्र अनुभव होगा। जब तुम कैलास पर्वत माला के नीचे दारचिन पर खड़े होकर देखोगे तो तुमको शिखर के दर्शन मात्र होंगे। आगे चलकर तुम देखोगे कि इसका विकाश हो गया है और यह अधिक स्पष्ट हो गया है। जब तुम कैलास के शिखर के बिलकुल नीचे चले जाओगे जहां से कि सिन्धु नदी निकली है तो तुम को पूरा शिखर दिखाई देने लगेगा। इसी प्रकार जब तुम निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करोगे तो तुमको अद्वैत ब्रह्म का कुछ चमत्कार दिखाई देगा। इनको अस्मि कहते हैं। जब तुम पूर्ण रूप से ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाओगे जिसको सहज निष्ठा भी कहते हैं तुमको उस (ब्रह्म) का पूर्ण अनुभव हो जावेगा अर्थात् भूमा पदवी को प्राप्त हो जाओगे। देवर्षि नारद ब्रह्म के दूर से ही दर्शन मात्र करके वापिस आगया। गुजरात के अखाने तीन बार उसका स्पर्श किया। शमशतबरेज़ और मंसूर ने उसकी तीन अञ्जली भर कर पी ली। श्रीदत्तात्रय जी और शुकदेव जी ने उस अनन्त आनन्द के समुद्र में खूब डुबकी लगाई।

३६७. अध्यात्मिक ज्ञान की प्रथम भूमिका की पूर्णावस्था सविकल्प समाधि है। इसको त्रिपुटी भी कहते हैं। यहां ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रह जाते हैं। यहां केवल एक वृत्ति रह जाती है। जब एक वृत्ति भी समाप्त हो जाती है तो केवल निर्विकल्प स्वयं ही प्राप्त हो जाती है।

बांसुरी बजाई है

(ले० श्री शान्ति स्वरूप वर्म्मा मेरठ)

सूर ने सितार कर देव ने पखावज सी,
मीरा करताले झांझ नरसी हिलाई है।
मंजीरे बिहारी मिरदंग पद्माकर ने,
ढोलकी गले में हरीचन्द के सुहाई है।
सारंगी बजाते मति राम रस खान संग,
ललित किशोरी पग नूपुर बंधाई है।
भक्त कवियों ने जोड़ स्वांग में समाजभारी,
गाथा दे दे तारी श्याम बांसुरी बजाई है।

सदाचार का संक्षेप तत्त्व

[ले० श्री आचार्य मदनमोहन जी गोस्वामी]

सदाचार धर्म और कुल का मूल कारण है। सदाचार को छोड़ कर कोई भी पुरुष अपनी इष्ट सिद्धि नहीं कर सकते। सदाचार विहीन पुरुष धर्म शास्त्रादि को भी पढ़लें परन्तु वह धार्मिक नहीं हो सकता। यदि सत्कुल में उत्पन्न होकर सदाचार का पालन न करे तो वह कुलीन नहीं कहा जा सकता। क्योंकि, शास्त्र में लिखा है यथा:-

आचार एव धर्मस्य मूलं राजन्! कुलस्य च।
आचाराद्विच्युतो जन्तुर्न कुलीनो न धार्मिकः॥

सदाचार रहित पुरुष को इस लोक में और परलोक में सुख नहीं मिलता। यज्ञ, दान, तपस्या में सफलता प्राप्त नहीं होती। यथाविधि साङ्ग वेदाध्ययन भी उनका व्यर्थ होता है। जैसा कि शास्त्र में वचन पाया जाता है।

"न आचार विहीनस्य, सुखमत्र परत्र च।
यज्ञदानतपांसीह, पुरुषस्य न भूतये॥

आचार हीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीता सह षड्भिरङ्गैः
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजंति नीडं शकुन्ताइव जातपक्षाः

सदाचार युक्त पुरुष को ही श्रीभगवान् के चरणारविन्दों में प्रेम भक्ति उत्पन्न होती है। अतएव द्विजाति मात्र को ही सदाचार का पालन करना उचित है। द्विजाति से त्रिवर्ण का भी बोध होता है तथा गृहीत दीक्षा युक्त पुरुष का भी बोध होता है। इसका प्रमाण भी शास्त्र में मिलता है।

"यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रस विधानतः।
तथा दीक्षा विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥

शास्त्र में सदाचार का लक्षण इस प्रकार वर्णन किया है।

"साधवः क्षीण दोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते॥

इसका अभिप्राय यह है कि, क्षीणदोष वाले पुरुष को साधु कहते हैं अर्थात् शास्त्रोक्त निषिद्ध कर्म जिनके क्षय हो गये हों उनको ही साधु कहते हैं। सत् शब्द साधु का वाचक है। सज्जनों के आचरण का नाम सदाचार है। शास्त्र निषिद्ध कर्म का त्याग करना, और शास्त्र विधि के प्रतिपालक महात्माओं के आचरण का प्रति पालन करना ही सदाचार प्रति पालन समझा जाता है। यह सदाचार अपार और अनन्त है। इसे लेखनी द्वारा लिख कर या मुख से वर्णन कर नहीं समझाया जा सकता।

सदाचार के पालन न करने से अनेक हानियाँ उत्पन्न होती हैं। वर्तमान समय में काल के प्रभाव से क्या ब्राह्मण, क्या संन्यासी, क्या विरक्त वैष्णव,

क्या साधारण गृहस्थ इन सभों के बीच में वैध शौच आचमनादिक में आस्था नहीं पाई जाती है। और संन्यासी तथा पुरोहितों में शिक्षा का अभाव पाया जाता है, तथा आलस्यादि दुर्गुणों से परिपूर्ण पाये जाते हैं यदि ऐसा ही रहा तो म्लेच्छ आचार के साथ समता हो जावेगी।

जब तक आचार का पालन न किया जावेगा, तब तक भगवान की भक्ति में अग्रसर नहीं हो सकते। निषिद्ध कार्यों में निष्ठा होने से भगवद्भक्ति का अन्तर्धान होता है।

यह सत्य है कि, जब तक अज्ञान निवृत्ति नहीं होती तब तक शास्त्र विधि की आवश्यकता होती है। अज्ञान निवृत्ति के अनन्तर शास्त्र उसपर शासन नहीं कर सकता। अज्ञान की निवृत्ति ज्ञान और भक्ति से ही होती है। विशिष्टगुण विशिष्ट रूप से अनुभव करने को "भक्ति कहते हैं। तात्पर्य यह है कि उक्त दोनों अवस्था में शास्त्र को विधि निषेध करने का अधिकार नहीं होता। परन्तु प्रापञ्चिक जगत् में प्रापञ्चिक लोगों के साथ व्यवहार होने पर उन लोगों को सदाचार का पालन करना अवश्य कर्त्तव्य है। इसके सम्बन्ध में श्रीकृष्ण चैतन्य महा प्रभुजी के परम अन्तरङ्ग पार्षद श्रीसनातन गोस्वामी और श्री रूपगोस्वामी प्रभृतियों का दृष्टान्त विद्यमान है। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी के पथ में सर्वावस्था में सदाचार पालनीय है। वर्जनीय आचरणों को सर्वदा परिहार करना कर्तव्य है। जैसे कि वास्तविक साधु की निन्दा, निन्दा शब्द से दोष कीर्त्तन समझना चाहिये। जिन वास्तविक साधुओं की निन्दा नहीं करनी चाहिये उनके लक्षण शास्त्र में वर्णित हैं।

यथा-"न प्रहृष्यति सम्माने नावमानेन कुप्यति।
न क्रुद्धः परुषं ब्रूयादित्येतत् साधु लक्षणम्॥

वेदादि शास्त्र विहित आचार परायण महात्मा भी साधु वाच्य हो जाते हैं। सिद्धान्त में तो भगवान् की अहेतुकी भक्ति करने वाला ही वास्तविक साधु पद वाच्य है। ऐसे साधुओं की निन्दा करना समस्त अनर्थों का मूल कारण होता है। इनकी निन्दा से आयुः क्षय धन पुत्रों का नाश, शत्रु वृद्धि, रोग वृद्धि, और पाप की वृद्धि होती है। तथा आत्माभिमान हो जाता है

शास्त्र में लिखा है कि:-

"अभक्तैः सह मैत्र्यादि असच्छास्त्र परिग्रहः"।

अभक्त जनों के साथ मित्रता न करे और असच्छास्त्रों का अनुशीलन भी न करे। इसी का नाम सदाचार है। इसका पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कार्य है। ऐसा न करने से धर्म की ग्लानी उत्पन्न हो जावेगी। सदाचार के सम्बन्ध में शास्त्रों में बहुत कुछ वर्णन किया है किंतु यहाँ पर तो संक्षेप से ही पाठकों की सेवा में निवेदन किया गया है।

शुभसंकल्प

[ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम]

संसार में आत्मोन्नति चाहने वालों के लिये सर्व प्रथम साधन शुभ संकल्प है। संकल्प मन का विषय है। मन के आधार पर ही मनुष्य का जीवन निर्भर है। सुख, शान्ति अथवा आनन्द की प्राप्ति को ही उन्नति कहते हैं। सुख भी दो प्रकार का है जिसको बाह्य, आभ्यन्तरीय अथवा लौकिक, पारलौकिक कहते हैं। इन्द्रिय जन्य सुख लौकिक है जिह्वा से रसमय स्वादु पदार्थों का सेवन करना, नासिका से सुगन्धित वस्तु को सूंघना, नेत्रों से

अच्छे २ दृश्य देखना, कर्णों से मनोहर गीत वाद्न आदि शब्द सुनना ये सब इन्द्रिय संसर्ग जन्य क्षणिक सुख है। इन विषयों का सुख भी मन के आधीन है। जब तक मन चाहे तभी तक ये अच्छे लगते हैं, मन के उपराम होने पर कैसे ही स्वादु व्यंजन रखे रहो खाने की इच्छा नहीं होगी। ऐसे ही इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न होने वाला विषयों का सुख मन का ही विषय है। न्यायशास्त्र में लिखा है:-

सुख दुःखाद्युपलब्धि साधनमिन्द्रियं मनः।

सुख दुख, शीत उष्ण, कड़ा मीठा, सुरूप कुरूप, भला बुरा, हानि लाभ की प्राप्ति का साधन इन्द्रिय मन है, (मननं मनः) मानने का नाम मन है। योग शास्त्र में इसकी पाँच वृत्तियें मानी हैं।

वृत्तयः पंचतयः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः।
प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः॥

वृत्तियें पांच प्रकार की हैं क्लिष्ट (राग द्वेषादि क्लेशों की हेतु) और अक्लिष्ट (राग-द्वेषादि क्लेशों को नाश करने वाली) प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति ये इनके नाम हैं। बाह्य पदार्थों की संख्या का अनिश्चय होने से उनके संयोग से उत्पन्न होने वाली वृत्तियें भी असंख्येय हैं परन्तु उनको पांच विभाग में बांट दिया है। जब ये वृत्तियां रागद्वेष आदि क्लेश उत्पन्न करती हैं तभी राग से सुख द्वेष से दुःख उत्पन्न होते हैं। राग द्वेष के आधीन उनको प्राप्त करने वा हटाने को शुभ अशुभ कर्म करता है इसके फल स्वरूप बन्धन में पड़ता है। अक्लिष्ट वृत्तियां अभ्यास, वैराग्य की दृढ़ता से उत्पन्न होती हैं। इसी का नाम शुभ संकल्प है। अक्लिष्ट वृत्तियों का उत्पन्न करना ही शुभ संकल्प और क्लिष्ट वृत्तियों का उत्पन्न करना अशुभ संकल्प है। जैसे २ संकल्प किये जायंगे वैसा ही आचरण किया जायगा जैसा आचरण होगा तद्रूप ही फल (परिणाम) होगा। चित्त की बनावट ऐसे ढंग की है कि जैसा २ संग होगा उसी प्रकार का चिन्तन करेगा। जैसा चिन्तन करेगा उसी के आकार को प्राप्त हो जायगा। जैसा कि महात्मा सुन्दरदास जी ने कहा है:-

जो मन नारि की ओर निहारत तो मन होत है नारि को रूपा।
जो मन काहू से क्रोध करे तब क्रोधमयी हो जाय तद्रूपा,
जो मन माया ही माया रटे नित तो मन डूबतमायाके कूपा।
सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा॥

तथाचः-यति सर्वं नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया।
कीटको भ्रमरी ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते॥

जैसे कीड़ा भ्रमरी का ध्यान करने से तद्रूप हो जाता है ऐसे ही मनुष्य सद्भावनाओं (मैं शुद्ध हूं, बुद्ध हूं पवित्र हूं सत् चित् आनन्द स्वरूप हूं, अजर हूं, अमर हूं निर्विकार हूं, अखण्ड सुख का भण्डार हूं, मैं सब का मित्र हूं, मेरा शत्रु कोई नहीं। मेरी शक्ति महान है, मुझे कर्म लिपाय-मान नहीं होते, मैं सदा मुक्त हूं इत्यादि) का एक निष्ठा से ध्यान करने से तद्रूप हो जाता है। जब संसार में दोनों मार्ग हमको प्रत्यक्ष दीखते हैं तो क्यों न हम अच्छे मार्ग का अनुसरण करें। जब हमारे आधीन है कि हम शुभ संकल्प करें तो उन्नति और अशुभ करें तो अवनति होती है तो क्यों जान बूझ कर अपने पांव में कुल्हाड़ी मारें। जब हम विषयों के क्षणिक सुख को ही सब से उत्तम सुख समझते हैं तभी उनमें आसक्त होते हैं, और जब थोड़ी देर के अनन्तर उनका परिणाम दुख मिलता है तो उन विषयों से घृणा हो जाती है फिर थोड़े काल में उनका चिन्तन करते हैं इसी का नाम अशुभ संकल्प है। इसके निरोध के लिये

सब से मुख्य साधन इससे मुक्त होने का दृढ़ विचार है। यदि हम यह दृढ़ विचार करलें कि हम को शुभ संकल्प वाला होना है तो हम उसके लिये उपाय सोचेंगे। हम को इसके लिये अनेक उपाय मिलेंगे जिनका अभिप्राय होगा कि मन को वश में करना। बिना मन के वश किये हम शुभ संकल्प नहीं कर सकते। मन को वश में करने के लिये भगवान् की भक्ति करनी श्रेयस्कर है जो नव प्रकार की है यथा-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यभाव, सखा भाव, आत्म निवेदन। भगवत् कथा श्रवण में मन लग जाने से बुरे संकल्प नहीं उठ सकते। यद्यपि पहले २ मन नहीं लगेगा तथापि शनैः २ प्रतिदिन श्रवण करने से ऐसी दशा प्राप्त हो जाती है कि मन उसी में तल्लीन हो जायगा और अन्त में इसी से मोक्ष की प्राप्ति हो जायगी, जैसे महाराज परीक्षत को हुई। इसी प्रकार कीर्तन में भी मन का विषयों से पूर्ण निरोध होकर भगवत् के दर्शन हृदय में होने लगते हैं जैसे नारद जी ने कहा है:-

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि॥

तीर्थपाद-साधु सन्त, पवित्र स्थान, विद्वान् हैं चरण जिन के ऐसे भगवान् अपने गुणगान सुनने को अति उत्कण्ठित हो मेरे गाते समय बुलाये हुये के समान हृदय में दर्शन देते हैं। इसी प्रकार उक्त नवधा भक्ति के एक निष्ठा से आचरण करने से गुरुमन्त्र के जप से, ध्यान से स्वाध्याय से, प्राणायाम (योग) से मन का निरोध होने लगता है उस अवस्था में साधक के शुभ संकल्प होते हैं। इसके लिये अधिक कहने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य के शुभ संकल्पों से क्या नहीं हो सकता। मेरी अनुमति में तो भगवान् से मिलने के जितने २ (मज़हबों) धर्मों में जितने भी मार्ग हैं सब में सर्व प्रथम सीढ़ी शुभ संकल्प है। ज्ञानी, ध्यानी, योगी, जपी, तपी, इन सब को प्रथम अपने मन को इष्ट वस्तु में लय करना पड़ता है, ज्ञानी को अपना मन अपने इष्ट वा ध्येय में तल्लीन करना पड़ता है जैसा कि श्री गीता जी में कहा है:-

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञान निर्धूत कल्मषाः॥

ध्यानी को अपने प्रेमी के ध्यान में मन को लय करना पड़ता है। योगी को भी हृदय कमल में ओंकार का ध्यान करने में मन को निर्विषय करना पड़ता है। एवं जपी को मंत्र जप में, तपी को तप में मन का शुभ वा अशुभ संकल्पों का नाश करना पड़ता है अब प्रश्न होता है कि जब मन का नाश ही हो गया तो संकल्प होंगे ही नहीं इसका उत्तर यह है कि उक्त मनोनाश की अवस्था सिद्ध पुरुषों की ही होती है, साधन अवस्था में एकाएक ऐसा होना असम्भव है। अतएव ज्ञान की सात भूमिकाओं में प्रथमा भूमिका शुभेच्छा ही मानी गई है। शास्त्र विहित कर्मों के आचरण में भी सर्व प्रथम कर्म शुभ संकल्प होता है। किसी भी उच्च से उच्च कार्य को करने पर यदि संकल्प अशुभ हैं तो निष्फल है। संकल्प विकल्पात्मकं मनः (मनः सृष्टि विकुरुते) के आधार पर तो स्पष्ट मालुम पड़ रहा है कि यह जगत् संकल्प जन्य है। विहित कर्मों का अनुष्ठान शुभ संकल्प के लिये है, अविहित कर्मों का निषेध अशुभ संकल्पों के निराकरण के लिये है। जैसा कि निम्न श्लोक में कहा है कि:-

चित्तस्य शुद्धये कर्म नतु वस्तूपलब्धये।

चित्त के शुद्ध होने के लिये कर्मों का विधान है अन्यथा (नास्त्यकृतः कृतेन) अकृत जो आत्मा है वह कृत (कर्म) से प्राप्त नहीं हो सकता। अस्तु यह बात भी निर्विवाद सिद्ध है कि जितना पार

उतना ताप। जितने अशुभ संकल्प किये जायंगे। उतना ही दुःख, चंचलता, क्षुब्धता बेचैनी मन में बढ़ती जायगी, हम किसी का अनिष्ट चिन्तन ही न करेंगे तो शरीर से किसी तरह बना हुआ भी वह कर्म दोष नहीं माना जायगा।

मनसा चिन्तितं कर्म कायया विनिवर्तते।

मन से सोचा हुआ कर्म शरीर से किया जाता है इसलिये जैसी संकल्प सृष्टि होगी वैसा ही भावी जीवन होगा। वेद में एक शिव संकल्प सूक्त ही है। जो मुमुक्षुओं के लिये परम उपयोगी है तथा जो भगवद्भक्ति आश्रम की प्रार्थना में निश्चित है जिसका अनुवाद एक विद्वान ने हिन्दी भाषा में कविता बद्ध अत्यन्त मनोहर सरल शब्दों में अपनी सुलेखिनी द्वारा इस प्रकार किया है।

जाग्रत स्वप्न दशाओं में जो दूर भागता रहता है।
आत्म प्रेरित इन्द्रिय गण को ज्योति सदा जो देता है॥
वह मेरा मन निशिदिन भगवन् शुभ ही शुभ संकल्प करे।
श्रेष्ठ विचारों से युत होकर दुष्ट गुणों को दूर करे॥
ज्ञानी कर्मवीर जिस मन को सभी तथा शुभ कर्मों में।
सदा लगाते जो अद्भुत है अन्दर गुप्त शक्ति सब में॥
वह मेरा मन० (उक्त प्रकार से सब में समझना)॥
उत्तम ज्ञान बोधका साधन जो है अमृत ज्योति समान।
जिसके बिना न कुछ होता है सब के अन्दर जिस का स्थान॥
भूत भविष्यत् वर्तमान सब जिस मन ने हैं ग्रहण किये।
सप्तेन्द्रिय होता जिस कारण ज्ञान यज्ञ को रचे हुये॥
जिस मन के आश्रय से होता वेदों का सारा विज्ञान।
है विचार केन्द्रित जिस मन में रथ नाभिमें आर समाना॥
इन्द्रियरूपी घोड़ों को जो सारथि सम ले जाता है।
हृदय स्थित जिस मन का अनुपम वेग न मापा जाता है

आशा है इस वेद के सूक्त से पाठक समझ गये होंगे कि मन का साम्राज्य कहां तक विस्तृत है। ऐसे पराक्रमी सम्राट् का वश में करना यद्यपि बड़ा कठिन और दुःसाध्य कार्य है तथापि मनुष्य का सब से पहला कर्तव्य यही है कि अपने विचारों को शुभ व कल्याणमय करे। निरन्तर उद्योग करने वाले के लिये कोई काम असम्भव नहीं रहता। जिनकी इच्छा दूसरों को दुःख देने की होती है, जिनके विचार दूसरों के दोषों को ही निरन्तर अवगाहन करते हैं, जिनकी दुराशा दूसरों का अनिष्ट ही सोचती रहती है, उनका मन दूसरों के दोष देखने से दूषित हो जाता है, उनकी इच्छा निष्फल पड़ जाती है, उनके विचार दुष्ट हो जाते हैं। उनके साथी अच्छे मनुष्य नहीं बनते। कौवे की कुचेष्टायें जिस प्रकार कोयल का कुछ बिगाड़ नहीं कर सकती इसी तरह वे सत्पुरुषों का बिगाड़ नहीं कर सकते। ऐसे मनुष्य कौवों की भांति जगमें निन्दित होते हैं ऐसे पुरुष परद्रोही कहाते हैं तथा जो पुरुष संसार के पदार्थों में इन्द्रिय तृप्ति के लिये आसक्ति करता है एवं निरन्तर आत्महानिकर विषयों का चिन्तन करता है वह आत्मद्रोही कहाता है। द्रोह दूसरे से तथा अपने से दोनों ही हानि कर रहे। सुतरां दूसरों के लिये श्रेष्ठ इच्छा रखना एवं अपने लिये श्रेष्ठ हितकर विचारों का बनाना ही शुभ संकल्प है। जिससे कि चारों ओर सुख व शान्ति का प्रसार हो, अज्ञान जो कि निराधार हो उसका मूलतः संहार हो, प्रकाशमय विहार हो दूर अन्धकार हो, हृदयपटल पर सद्भावनाओं की गुञ्जार हो, त्रिविध दुःख छारछार हो, ज्ञान का संचार हो, दिल में सदुद्गार हो सुखमय संसार हो, आनन्द का न पारावार हो, फिर क्या है देखो सब शुभ ही शुभ विचार हों।

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

आत्मानुभूति

(ले० श्री महात्मा राम)

गतांक से आगे।

'श्रोत्रस्य श्रोत्र मनसो मनो यद्वाचोह वाच
स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षु रतिमुच्यधीरा
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवंति' ॥

श्रोत्रेन्द्रिय स्वतः जड़ है परंतु उस चैतन्य की सत्ता शब्द ग्रहण करने में समर्थ होती है, इसलिये वह ब्रह्म श्रोत्र का भी श्रोत्र है। सपूर्ण विषयों के जानने में मन साधारण कारण है, वह भी स्वरूप से जड़ है परंतु उस चैतन्य की सत्ता से वह मन सर्व विषयों को जानता है। इसलिये ब्रह्म मन का भी मन है। वागिन्द्रिय स्वतः जड़ है परंतु चैतन्य की सत्ता से शब्दों को उच्चारण करने में समर्थ होती है, इसलिये ब्रह्म वाणी का भी वाणी है प्राण भी स्वतः जड़ है परंतु उस चैतन्य की सत्ता से उर्ध्व अधो गमन करने को समर्थ होता है। इसलिये ब्रह्म प्राण का भी प्राण है। उसी ब्रह्म की सत्ता से चक्षु जो स्वतः जड़ है रूप को देखने के योग्य होजाता है, इसलिये ब्रह्म चक्षुका भी चक्षु है, वह ब्रह्म ही सब को सत्ता देनेवाला है उसी की सत्ता से वागादिक सर्व इन्द्रियां अपने२ विषयों को ग्रहण करने की शक्ति वाले होते हैं, वह चेतन ब्रह्म सर्व का प्रेरक है। और सबके अन्तर असंग होकर स्थित है। वही आत्मा अमृत रूप है उसको जान कर विद्वान श्रोत्रादिक इन्द्रियों में आत्म बुद्धि को त्याग कर देह पात होने के पश्चात् अमर भाव को प्राप्त होता है।

यत्राज्ञानइवैतमितरस्तत्र पश्यति ।
आत्मत्वेन यदा सर्वं नेतरस्तत्र चाण्वपि ॥

जहाँ अज्ञान से द्वैत भाव होता है वहां फिर और ही और रूपको देखता है तब अणु मात्र भी अपने से अलग नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषत् में इसी विषयको स्पष्ट दिखलाया है।

'यत्रहि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति
तदितर इतरंपश्यति तदितर इतरं शृणोति
तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मनुते
तदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य
सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केनं कं पश्येत्
तत्केन कं शृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कं
मन्वीत्तत्केन कं विजानीयात् येनेदं सर्वं विजानाति तं
केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति'

जिस अज्ञान विमोहित मूढ़ अवस्था में यह पुरुष द्वैत भाव की न्याई आत्मा में निश्चय करता है तब यह अनेक द्वैतपने को देखता है। यद्यपि सर्व इन्द्रियों के विषयों को आत्मा ही अपनी सत्ता से गृहण करता है तथापि अज्ञान से मोहित होने के कारण, नाक सूँघता है आंख देखती है, कान सुनता है, वाक् बोलती है, मन मनन करता है, बुद्धि जानती है इत्यादि रूप से अपने आत्मा से सबकुछ अलग अनेक प्रकार के आकार बनजाते हैं। और जब यह पुरुष सद्गुरु से अनुग्रहीत होजाता है तब आत्मानुभव की अवस्था में सर्व कुछ अपना आत्मा रूप ही होजाता है। वहां पर किसको किस साधन से सूँघना, और किसको किस से देखना, किस शब्द को किससे सुनना, किस से बोलना, किससे क्या मनन करना, किसको जानना। भाव यह है कि जिस अवस्था में यह पुरुष सर्वात्मभाव में स्थित होता है उस अवस्था में सर्वेन्द्रियां और इन्द्रियों के समस्त देवता अपने २ कारण में लय हो जाते हैं। यथा मुण्डकोपनिषि:-

ते ब्रह्मलोकेषु परान्त काले पर मृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।
गताः कलाः पंच दश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु,
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्वएकी भवन्ति।

जो विद्वान् सर्व दोषों से रहित संन्यास योग रूप तप करके शुद्ध मन वाले गुरुदेव से अनुग्रही हुए वेदान्तों के अर्थ में पूर्ण निष्ठा वाले तपस्वी हैं वह ब्रह्मा के अन्तकाल में अर्थात् प्रजापति हिरण्य गर्भ के देह के अन्तसमय में सर्व बन्धनों से मुक्त होजाते हैं उनके पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेन्द्रिय और पंच प्राण यह पांच दश १५ कलायें अपने अपने कारण भूत आकाशादिक पाँचों भूतों में मिलजाते हैं। और कर्म तथा बुद्धि भी परम, अव्यय, नाश रहित, आत्मा मे मिलकर तद्रूप होजाते हैं। यथाः-

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छति नाम रूपेविहाय।
तथा विद्वान् नाम रूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुष मुपैतिदिव्यम् ॥
'सत्यो हवै तत्परम ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।'

जैसे नदियाँ स्रवति हुई नाम तथा रूप को त्याग कर समुद्र में लीन हो जाती हैं। तैसे ही विद्वान् नाम रूपादिक उपाधि को त्याग कर परम दिव्य प्रकाशमान पुरुष को प्राप्त होता है। ऐसा वह पुरुष निश्चय उस परम ब्रह्म को जान कर ब्रह्म रूप ही होता है इसमें संशय नहीं है।

ब्रह्म से भिन्न कोई वस्तु नहीं है इस अर्थ को छान्दोग्योपनिषत् के छठे अध्याय में उद्दालक ऋषिने श्वेतकेतु के प्रति उपदेश किया है।

'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।'

हे प्रिय दर्शन यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पहले यानी नाम रूप धारण करने से पहले द्वैत रहित अर्थात् अद्वितीय ही था, एक था निःसंदेह सत् ब्रह्म रूप ही था। श्रुति में सत् रूप ब्रह्म के तीन विशेषण दिये हैं।

एकं, एव, अद्वितीयम्'।

एक कहने से सजातीय भेद का निषेध किया है। और एव से स्वगत भेद का निषेध किया है और अद्वितीय पद से विजातीय भेद का निवारण किया है। भावार्थ यह है कि जगत् के हरेक पदार्थ तीन परिच्छेद यानी तीन भेद वाले होते हैं जैसे वृक्षों में बड़ पीपल नीम गुलर जामन इनका आपस में एक दूसरों का सजातीय भेद होता है। और वृक्षों का जो मनुष्यों के साथ तथा पशुओं के साथ भेद है वह विजातीय भेद होता है। और वृक्षों के जो अपने ही डाले शाखा हैं उनमें भी एक दूसरे से भिन्न भिन्न भेद है वह स्वगत भेद होता है। ऐसे तीनों भेद ब्रह्म में नहीं हैं। ब्रह्म सजातीय भेद वाला इसलिये नहीं है कि ब्रह्म जैसा कोई और दूसरा ब्रह्म नहीं है इस अर्थ के बोधन करने के लिये श्रुति ने 'एक' कथन किया है। और ब्रह्म से विरुद्ध स्वभाव वाला कोई नहीं है इसलिये ब्रह्म में विजातीय भेद नहीं है। अद्वितीय शब्द से श्रुतिने विजातीय भेद का निषेध किया है। और ब्रह्म निरवयव है इसलिये ब्रह्म में स्वगत भेद भी नहीं है। स्वगत भेद को निवारण करने के लिये श्रुति ने 'एव' शब्द कथन किया है। इस प्रकार तीनों भेद रहित केवल अद्वितीय ब्रह्म में किसी प्रकार का द्वैत नहीं है यथा ऐतरेयोपनिषत्।

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्।
किञ्चनमिषत् ईक्षत लोकान्नुसृजाइति ॥'

निःसंदेह यह जगत् एक आत्मा ही सृष्टि से पूर्व विद्यमान् था आत्मा से इतर और कुछ भी न था और मैं इन पंच भूत रूप लोकों को सृजूँ (उत्पन्न) करू ऐसी इच्छा करता हुआ। इस प्रकार की इच्छा के पश्चात् आत्मा ने ही इन सर्व लोकों को अपने आप में रचा

अर्थात् आपही स्वयमेव सर्व रूपों को धारण किया। इत्यादि प्रमाणसिद्ध ब्रह्म का अद्वैत पना ध्रुव है इस में कोई सन्देह नहीं है। इसी अद्वैत रूप सत् वस्तु का भूमा शब्द करके नारद मुनि के प्रति सनत कुमारों ने उपदेश किया है।

हे नारद! जो निश्चय करके भूमा है वही सुख रूप है और जो अल्प वस्तु है वह सुख नहीं है अतएव भूमा ही तुमको जानने के योग्य है। तब नारद जी ने कहा कि हे भगवन्! मैं भूमा को जानना चाहता हूं। इस प्रकार नारद जी के पूछने पर सनत कुमारों ने कहा कि।

'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्य न्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यं स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति'

हे नारद! उस अद्वैत निर्विशेष आत्म तत्व में स्थित हुआ पुरुष न अन्य वस्तु को देखता है, न अन्य वस्तु को सुनता है, न अन्य वस्तु को जानता है ऐसा यह भूमा है। वह भूमा सर्व व्यापक है महान् है। और जहाँ अन्य वस्तु को देखता है, अन्य वस्तु को सुनता है, अन्य वस्तु को जानता है, वह अल्प है भूमा नहीं है। जो अल्प है वही नाश रूप मरण धर्म वाला है। फिर नारद मुनि ने पूछा कि हे भगवन्! वह भूमा किसमें प्रतिष्ठित है। तब सनत कुमारों ने उत्तर दिया कि वह स्वमहिम्नि' यानी अपनी महिमा में ही प्रतिष्ठित है अथवा किसी में भी प्रतिष्ठित नहीं है। हे नारद! गौ, अश्व, हस्ती, सुवर्ण, दास, स्त्री, ग्राम, राज्य आदि वस्तुयें जो हैं वह एक दूसरे की महिमा करके स्थित हैं।

ऐसी महिमा मैं तुझे भूमा की नहीं कहता हूं क्योंकि परमार्थ दृष्टि से वह भूमा पूर्ण होने के कारण कहीं नहीं रहता है। जो अन्य के आश्रय रहता है वह अल्प है विकारी है और वह नाशवान् होता है। फिर नारद जी ने पूछा कि हे भगवन् उस भूमा को मैं किस प्रकार से जानूं। तब सनत कुमार ने कहा कि हे नारद! वह भूमा तुम्हारे नीचे भी है तथा ऊपर भी है, पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण सब कुछ भूमा रूप ही है उससे पृथक और कुछ नहीं है यह सनत कुमार ने नारद के प्रति भूमा का परोक्ष रूप से उपदेश किया था। अब उसी भूमा का अहंभाव से अपरोक्ष रूप में उपदेश करते हैं कि। हे नारद मैं ही नीचे हूं, मैं ही ऊपर हूं, मैं ही उत्तर हूं, मैं ही दक्षिण हूं, मैं ही पूर्व और पश्चिम हूं, मैं ही ब्रह्म हूं और जो कुछ भी है वह सर्व कुछ मैं ही हूं। फिर नारद जी के निश्चय कराने के लिये सनत कुमार ने उसी भूमा का आत्म शब्द से उपदेश किया। ताकि नारद जी को यह शंका न रहजाय कि पहले भूमा का उपदेश किया था और अभी इन्होंने अहं शब्द से अपना उपदेश किया है परन्तु मुझ से तो दोनों ही पृथक् हैं। सनत कुमार ने कहा की। हे नारद! जिस भूमा को हमने तुम्हारे प्रति अभी उपदेश किया था वह भूमा तुम्हारा अपना ही आत्मा है। वह तुम्हारा शुद्ध चैतन्य आनन्द स्वरूप आत्मा नीचे है, तथा वही आत्मा ऊपर है, वही आत्मा पूर्व और पश्चिम में है, वही आत्मा उत्तर दक्षिण में ही, वही आत्मा जन्म रहित अविनाशी अखण्ड आकाशवत् परिपूर्ण रूप से सर्वत्र में स्थित है उससे पृथक् कुछ भी नहीं है। इस प्रकार जो अपने आत्म स्वरूप को सर्वत्र में स्थित देखता है, श्रवण करता है, मनन करता है, और विचार करता है वही आत्मा में रमण करता है, वही आत्मा के साथ क्रीड़ा

करता है, और आत्मा में समाधि के आनन्द को प्राप्त होकर अवाच्य, मग्न, होता हुआ तृप्त होजाता है। और जो ऐसे आत्म विचार से रहित हैं वे पराधीन होते हुये नाशवान् लोकों को प्राप्त होते हैं और उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका आवागमन अनेक दुःखों से परिपूर्ण योनियों में होता है। इस जगत् की उत्पत्ति कहां से हुई है इस शंका की निवृत्ति के लिये फिर सनतकुमार ने कहा कि हे नारद! जो आत्म वेत्ता विद्वान अपने आप को ही देखता है, आपको ही सुनता है, आपको ही जानता है और सदा आत्मानन्द से तृप्त रहता है। उसी आत्मा से प्राण उत्पन्न हुआ है, उसी से आशा, उसी से स्मृति, उसी से आकाश उसी से तेज, उसी से जल, उसी से उत्पत्ति और लय, उसीसे अन्न, उसीसे बल, उसीसे विज्ञान, उसीसे ध्यान, उसीसे चित्त, उसीसे संकल्प विकल्प, उसीसे मन, उसी आत्मा से वाणी उत्पन्न होती है और उसी आत्मा से नाम तथा सम्पूर्ण कर्म उत्पन्न होते है। हे नारद! बहुत कहां तक कहूं उस आत्म-वेत्ता विद्वान् के आत्मा से ही यह सर्व नाम रूपात्मक जगत् उत्पन्न होता है और उसीके आत्मा में लय हो जाता है क्योंकि जिस आत्मपद को वह विद्वान प्राप्त हुआ है वही आत्मा सारे जगत् का मूल कारण है। हे नारद! वह आत्मदर्शी विद्वान् मृत्यु के भय से, तथा रोगों से और अध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के दुःखों से रहित होता है वह ब्रह्मवेत्ता अन्त में ब्रह्म को ही प्राप्त होता है।

'स एकधा भवति त्रिधा भवति पंचधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृत शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशति ॥'

हे नारद! वह सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा सृष्टि से पहले एक अद्वैत ही था फिर यही तीन भेद वाला तेज जल पृथ्वी रूप हुआ, फिर आकाश वायु आदि पंच भूत रूप हुआ, पुनः महत्व अहंकार और आकाशादि पंचभूत ऐसे सात भेद वाला हुआ, पुनः वही आत्मा ७ उपरोक्त और औषधी, अन्न, वीर्य, और पुरुष रूप से नव प्रकार का हुआ। फिर यही आत्मा ग्यारह रुद्र रूप हुआ फिर एक सौ ग्यारह फिर एक सहस्र और बीस रूप वाला हुआ इस प्रकार आगे सृष्टि का विस्तार हो कर अनेक रूप होगया जो गणना से बाहर है वे अनन्त है। इस प्रकार वही एक परमात्मा अनेक रूप हो गया।

अपूर्ण

श्रुति-सार

गतांक से आगे

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूप बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनु पश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्

एक सब जगत् को वश में रखने वाला अन्तर्यामी है जो एक रूप को नाना प्रकार का करता है। जो ध्यान शील उस आत्मा में स्थित परमात्मा को देखते हैं उनको सनातन सुख प्राप्त होता है अन्य संसारी पुरुषों को नहीं ॥ १ ॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषाम् शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १ ॥

अनित्य पदार्थों में नित्य, चेतनों में भी चेतन बहुतों में एक है जो जीवों के प्रति कामनाओं को

विधान करता है उस अन्तर्यामी को जो ध्यान शील देखते हैं उनको परम शान्ति है औरों को नहीं ॥ १३ ॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखं । कथंनु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा

जिस परमानन्द को यह यह है इस प्रकार अंगुली निर्देश से कहने अयोग्य मानते हैं उस को कैसे जानूँ क्या वह प्रकाशित होता है वा स्वयं प्रकाश करता है ॥ १४ ॥

न तत्रसूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्त मनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १५ ॥

उस में सूर्य नहीं प्रकाश कर सकता चन्द्र और तारागण का प्रकाश भी नहीं यह बिजलियाँ भी वहां नहीं चमक सकती। यह अग्नि कहां से प्रकाश करे किन्तु उस ही स्वयं प्रकाशमान से सब प्रकाशित होते हैं उस के प्रकाश से यह सब प्रकाशित होता है ॥ १५ ॥

इति पंचमी वल्ली समाप्ता।

अथ षष्ठी वल्ली।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिंद्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः

इस के भय से अग्नि जलता है, सूर्य तपता है, इन्द्र और वायु चमकते और चलते हैं तथा पांचवा काल दौड़ता है ॥ ३ ॥

इह चेदशकद्बोद्धुम्प्राक् शरीरस्यविस्रसः ततः सर्वेषु-लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥

यदि इस जन्म में शरीर के नाश होने से पहले जानने को समर्थ होवे तो संसार के बन्धन से छूट जाता है नहीं तो न जानने से विरचित लोकों में शरीर धारण करने के लिये समर्थ होता है ॥४॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसासह । बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥ १० ॥

जब पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ ठहर जाती हैं और बुद्धि भी विरक्त या विविध चेष्टा नहीं करती उस को मुक्ति की दशा कहते हैं ॥ १० ॥

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा । अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥ १२ ॥

न आँख से, न मन से न वाणि से ही पाने योग्य है ऐसे कहते हुए पुरुष से अतिरिक्त वह क्योंकर प्राप्त हो सकता है ॥ १२ ॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति

अस्ति, नास्ति इन दोनों में तत्व की भावना से है ऐसा ही जानना चाहिये है ऐसा ही जानने वाले को तत्व भाव प्रसन्न होता है ॥ १३ ॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥

जब इस संसार में हृदय की सारी गांठें छूट जाती हैं तब मनुष्य मुक्त होता है इतना ही शास्त्र का उपदेश है ॥ १५ ॥

इति षष्ठी वल्ली समाप्त

इति कठोपनिषद्

अथ मुण्डकोपनिषद् ।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य-कर्ता भुवनस्य गोप्ता । स ब्रह्म विद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह

ब्रह्मा देवताओं में सब का उत्पादक, रक्षक उत्पन्न हुवा। उसने अथर्वा संज्ञक अपने बड़े पुत्र को सब विद्याओं में श्रेष्ठ मुण्डक ब्रह्म विद्या का उपदेश किया ॥ १ ॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरो-वाचांगिरे ब्रह्मविद्याम् । स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजो अंगिरसे परावराम् ॥ २ ॥

अथ र्वा को जिस का ब्रह्मा ने उपदेश किया अथर्वा ने अंगिरस ऋषि से तां उस को कहा उसने भारद्वाज गोत्र वाले सत्यवाह को और सत्यवाह ने अंगिरा को परा और अपरा विद्या का उपदेश किया ॥ २ ॥

शौनको हि महाशालोअंगिरसं विधि-वदुपसन्नः प्रच्छ । कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥ ३ ॥

सुना है महागृहस्थी शौनक ने विधि पूर्वक अंगिरा ऋषि के समीप जाकर पूछा कि हे भगवन्! किसके जानने पर यह सब जाना जाता है ॥ ३ ॥

तस्मै स होवाच द्वेविद्ये वेदितव्य इति ह स्म यद् ब्रह्म विदो वदन्ति पराचैवा परा च

निश्चय करके शौनक के ताईं अंगिरा ऋषि बोला दो विद्या जानने योग्य हैं कि परा और अपरा भेद से विद्या दो प्रकार की हैं ॥ ४ ॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽ थर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणम् । निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति अथा परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

उन दोनों के मध्य में ऋग्वेद, यजुर्वेद अथर्ववेद, शिक्षा याज्ञवल्क्यादि कृत, कल्पशास्त्र कात्यायनादिरचित, व्याकरणपाणिन्यादि निर्मित, निरुक्त यास्कादि मुनिविरचित्त, छन्द पिङ्गलाचार्य निर्मित, ज्योतिष सूर्य विरचित, यह अपरा विद्या हैं और जिस से अक्षर की अधिगम प्राप्ति होती है वह परा है ॥ ५ ॥

यत्तद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् । नित्यं विभु सर्व गतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरः ॥ ६ ॥

जो यह ज्ञानेन्द्रियों का विषय नहीं कर्मेन्द्रियों का विषय नहीं उसका गोत्र नहीं रक्त पीतादि वर्णों से रहित, चक्षु श्रोत्रादि से रहित, हस्त पादादि से रहित, सर्व व्यापक, और जो अत्यन्त सूक्ष्म है उस वृद्धि और क्षय से रहित नित्य विभु इयत्ता से रहित चराचर सृष्टि के कारण को विवेकी पुरुष देखते हैं ॥ ६ ॥

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्या मोषधयः सम्भवन्ति यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥ ७ ॥

जैसे मकड़ी अपनी नाभि से जाला सूजती है और उसको समेट लेती है और जिस तरह पृथिवी से अन्नादि औषधियें उत्पन्न होता होती हैं और जैसे जीते पुरुष से केश और लोम उत्पन्न होते हैं। इसी तरह ब्रह्म से सृष्टि काल में संसार उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

सत्योपदेश

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

नित्य प्रति भजन गाना परमेश्वर के नाम का संकीर्तन करना ही सार है और सब असार है।

ध्यान करो, भजन करो, प्राणायाम करो, प्रार्थना के साथ साथ परमात्मा के ऊपर पूरा २ विश्वास करो। परमेश्वर हरेक वस्तु में विराजमान है, वह बड़ा दयालु, कृपालु है और सहायता करने वाला है। वह क्षमा स्वरूप सब की भूल चूक क्षमा करने वाला दयालु है। उसको नमस्कार, करो धन्यवाद दो। 'ओं तत्सत्' मंत्र को बोलकर खाओ पीओ जो कुछ काम कर उससे पहिले 'ओं तत्सत्' कह लिया करो। ज्योतिस्वरूप और प्रकाश स्वरूप परमात्मा का सुनहरी प्रकाश आंख मींचकर दशवें द्वार में त्रिकुटी में देखा करो वा उसकी भावना किया करो। परमात्मा अपने बाहर और भीतर सब जगह छाया हुआ है। उसके सिवाय कुछ नहीं ऐसी भावना किया करो। क्षण मात्र भी ऐसी भावना मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है।

ओं निरंजन ओंकार प्रभु सोहं सत्य नाम कर्तार।
अच्युत गुरु गोविन्द दातार, परमानन्द रूपनिराधार ॥
एक अखण्ड ज्ञान भण्डार, तुम्हरी ज्योति का उजियार।
मैं मैं मैं पद सर्वाधार, नेति नेति कर वेद उचार ॥
एक आत्मा अपरम्पार, शंकर ब्रह्म सर्व का सार।
ओत प्रोत सब में निरंकार, जीवन प्राण आप ओंकार ॥
हरिनारायण अग्नि तार, दुख देत मैं कहूं पुकार।
कृष्णानन्ता चहुं ओड़, हूं घट अल्ला सर्व पसार ॥
विनवौं तुमको बारम्बार प्रीतम प्यार करो बहार।
नहतत गणपति नैन महार, होवे अनन्त तुम्हें नमस्कार।

इस मंत्र रूप भजन को भी जब तब कहा करो। बहुत नींद आवे जब सोओ और बहुत भूख लगे तब खाओ और यह समझो कि यह सब कुछ भगवान् के लिये कर रहे हैं और उन्हीं की प्रेरणा से कर रहे हैं विद्या। पढ़ना परोपकार करना उत्तम कर्म है।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद्दुःखमाप्नुयात ॥

"बं बं बं महादेव सदाशिव" की ध्वनि किया करो। धन्य है उस परमात्मा को जिसकी महिमा और गुणों को पर्वत, सागर, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारे प्रकृति का परमाणु यशोगान रहे हैं।

भजन

संग्रह कर्ता पं० गौरी शंकर ब्रह्मचारी

हम नन्द नन्दन मोल लिये ॥ टेक ॥
यम की फांस काट मुकराये, अभय अजात किये ॥
सब कोऊ कहत गुलाम श्याम के सुनत सिरात हिये।
सूरदास प्रभु जू के चेरे, जूठन खाय जिये ॥

२

गरीबी है सब में सरदार ॥ टेक ॥
उलट के देखो अदल गरीबी,
जाकी पैनी धार ॥ १ ॥
सतयुग द्वापर त्रेता कलियुग,
परलय तारण हार ॥ २ ॥
दुख भंजन सुख दायक लायक,
विपत विडारन हार ॥ ३ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
हंस उबारन हार ॥ ४ ॥

३

जो कोई निर्गुण दर्शन पावे ॥ टेक ॥
प्रथमें सुरति जमावे तिलपै,
मूल मंत्र गहलावे।
गगन गराजे दामिनि दमके,
अनहद नाद बजावे ॥ १ ॥
बिन जिह्वा नामहि को सुमरो,
अमीरस अजर चुआवे।
अजपा जाप रहे सुरति पर,
नैनन पलक डुलावे ॥ २ ॥
गगन मंडल में फूल फुलाना,
महा भंवर रस पावे।
इंगला पिंगला सुसमन शोधे,
प्रेम ज्योति लौ लावे ॥ ३ ॥
सुन्न महलमें पुरुष विराजे,
जाय अमर घर छावे।
कहत कबीर सत्गुरु बिन चीन्हे,
कैसे वो घर पावे ॥ ४ ॥

४

पिया की खोज करे सोई पावे ॥ टेक ॥
ईश्वर कर्ता बसा घट भीतर,
कहत न कछु बन आवे।
स्वांसा सार सुरति में राखे,
त्रिकुटी ध्यान लगावे ॥ १ ॥
नाभि कमल स्थान जीवका,
स्वांसा लगि २ जावे।
ठहरत नाहिं पलक निशि वासर,
हाथ कवन विधि आवे ॥ २ ॥
बंक नाल में पवन चढावे,
गगन गुफा ठहरावे।
अजपा जाप जपै बिन रसना,
काल निकट नहिं आवे ॥ ३ ॥
ऐसी रहनी रहे निशि वासर,
कर्म भर्म बिसरावे।
कहें कबीर सुनो भाई साधो,
बहुरि न भव जल आवे ॥ ४ ॥

५

नाम लेत कछु विघन न लागे।
नाम सुनत यम दूरहु भाजे ॥ टेक ॥
निर्विघ्न भक्ति भज हरि २ नाऊं।
रसिक २ हरि के गुण गावे ॥
जात अजात जपै जन कोई।
जो जापै जिसकी गति होई ॥
हरि का नाम जपिये साधुन संग।
हरि के नाम का पूर्ण रंग ॥
नानक को प्रभु कृपा धार।
स्वांस २ हरि देऊ चिताय ॥